गदर



ग़दर • ऋषभचरण जैन

ग़दर

ऋषभचरण जैन की लौह-लेखनी द्वारा पहले लिखा जाकर जब 'ग़दर' प्रकाशित हुआ, तब इस उपन्यास के यथार्थवादी चित्रण को हिन्दुस्तान की विदेशी सरकार सह न सकी और इसे ज़ब्त कर लिया गया। तब से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक यह अप्रकाशित ही रहा।

भारतीय स्वतन्त्रता के लिए लड़े गए पहले युद्ध की कहानी 'ग़दर' में लिखी गई है। इस उपन्यास में विदेशी राज्य को देश से निर्मूल करने के लिए रची गई योजनाओं, सामन्ती षड्यन्त्रों और जनता के रोष का रोचक विवरण आपको मिलेगा।

गदर

ग़दर

(एतिहासिक उपन्यास)

ऋषभचरण जैन

ज्ञान प्रकाशन
नई दिल्ली-२

चतुर्थ संस्करण : १९८२

मूल्य :-पन्द्रह रुपये

ज्ञान प्रकाशन, २१ दरियागंज, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित और
विकास प्रैस दिल्ली में मुद्रित ।

एक लम्बा-चौड़ा कमरा है। एक बालिश्त मोटे गद्दे पर ऊनी क़ालीन बिछा है। उत्तर की ओर एक सिंहासन की शक्ल की चौड़ी कुर्सी रखी है। कमरे की छत पर उम्दा क़ीमती झाड़-फानूस लटके हैं। दीवारों पर पत्थरों में बेल-बूटे काटने में बड़ी कारीगरी की गई है। कमरे के दक्षिण की ओर द्वार है, और पूर्व-पश्चिम के दोनों पार्श्वों में कीमती, गद्‌देदार कुर्सियाँ करीने से सजी हैं। सिंहासन-नुमा कुर्सी के पास-ही एक कीमती—परन्तु छोटी और ऊँची—कुर्सी और रक्खी है।

सिंहासन-नुमा कुर्सी पर धूँधूपन्त नाना साहब और दूसरी पर उनके मन्त्री अजीमुल्लाखाँ विराजमान है।

नाना साहब पीले रेशम की सुबुक और हल्की पोशाक पहने हुए हैं। पगड़ी भी बसन्ती है—पायजामा भी, अचकन भी—यहाँ तक कि जूता भी पीले रेशम का बना हुआ है।

अजीमुल्लाखाँ नंगे—सिर हैं, यूरोपियन पोशाक उनके शरीर पर है, पैरों में जूते नहीं हैं, बादामी रंग के कीमती मोजे हैं।

आज बसन्ती—पञ्चमी है। इसके उपलक्ष्य में आज नाना साहब एक बड़ा सह-भोज करने वाले थे। परम-मित्र कैप्टेन हिलर्सडन और अन्य अंग्रेजी अफसरों को कानपुर नेवता भेजा गया और नेवता स्वीकार भी कर लिया गया था। परन्तु आज सुबह—ऐन मौक़े पर—सेनापति ह्वीलर और कैप्टन हिलर्सडन के पत्र मिले, जिसमें उन्होंने अत्यन्त नम्रतापूर्वक भोजन में शामिल होने से असमर्थता प्रकट की।

....नाना साहब ने बड़ी तैयारियाँ की थीं। यह संवाद पाकर

उन्हें बड़ी निराशा हुई। सब-कुछ तैयार हो चुका था, बहुत-से देशी मित्र भी आ चुके थे। यहाँ-तक कि कानपुर के अंग्रेज—अफसरों के स्त्री—बच्चे भी पहिले दिन आ चुके थे। साहब-लोगों के आने का निश्चय था। अब अचानक यह समाचार··· नाना साहब चकित हो गये!

आखिर उनकी आज्ञानुसार अजीमुल्लाखाँ दोपहर को कानपुर गए। अभी-अभी वहाँ से लौट करके नाना साहब से सब बातें कह रहे हैं।

नाना साहब ने कहा—"तो मेरठ में ग़दर हो गया?"

"जी हाँ," अजीमुल्लाखाँ ने कहा—"फौजें बागी हो गईं, अंग्रेज-अफसर, मेमें, बच्चे—सब—मौत के घाट उतार दिये गये। गिर्जे तोड़ डाले गये। साहब-लोगों के बंगले फूँक दिये गये, और बागी फ़ौजों ने दिल्ली की तरफ कूच कर दिया।"

कहते-कहते अजीमुल्लाखाँ की आँखें एक प्रकार के तीव्र उत्साह से चमकने लगीं।

नाना साहब ने इस पर लक्ष्य न दिया। असल चिंता उन्हें विद्रोह-समाचार की थी, और उससे अधिक चिन्ता अपने भोज की असफलता की। सच यह है, कि विद्रोह की बात को वे अधिक महत्त्व न दे सके, न इस बात की कल्पना कर सके कि 'तुच्छ' सिपाहियों-द्वारा न्याय-मूर्ति प्रतापी अंग्रेजों का बाल बाँका किया जा सकता है! कहने लगे—"मालूम होता है, मेरठ की कोई साधारण घटना विराटरूप होकर कानपुर पहुँची है···हाँ, और क्या-क्या बातें हुईं?"

अजीमुल्लाखाँ ने कहा—"यह मैं नहीं जानता—घटना साधारण है या असाधारण, पर कानपुर के साहब-लोगों की आँखें मारे डर के छोटी हो गई हैं। सब लोग मिलकर ऐसा उपाय सोच रहे हैं—जिससे मेरठ की आग उड़कर कानपुर न आन पहुँचे······

(कहते कहते सम्हलकर) बेचारों को भोज में आने का होश कहाँ !"

नाना साहब ने कहा—"इतने चिन्तित हो रहे हैं ?"

अजीमुल्लाखाँ बोले—"चिन्तित ?—अजी होश उड़ रहे हैं ! रूस-वालों से लड़ते-वक्त भी गोरों के चेहरे मैंने ऐसे भय-ग्रस्त नहीं देखे—जैसे अब। बेचारा बूढ़ा ह्वीलर अवश्य कुछ गम्भीर है—और तो सब बस........"

"तुमने कहा नहीं—साहब, फिक्र क्यों करते हैं ? मामूली बात है।" नाना साहब ने साग्रह पूछा।

अजीमुल्लाखाँ ने कहा—"अजी, कहता तो तब, जब मेरी कोई सुनता। मुझे तो उन्होंने अपनी मीटिंग में शामिल तक न होने दिया।"

"तो फिर ?"

"तो फिर क्या—ह्वीलर और हिलर्सडन बाहर आये। ह्वीलर ने गिड़गिड़ाकर सब बातें मुझे बताईं, और कहा—'महाराज से कहना, हमें क्षमा करें।'...बेचारा बूढ़ा !...चौवन वर्ष की नौकरी में पहली बार चिन्तित हुआ है न !"

अजीमुल्लाखाँ यह कहकर आप-ही आप धीरे-से हँस पड़े !

नाना साहब ने हाथ मलते हुए कातर स्वर में कहा—"और तुमने मेरा सानुरोध अनुनय......?"

"सब-कुछ महाराज, सब कह दिया था, पर..."

"फिर ?"

"पर वे लोग तो जैसे पागल हो रहे थे ! सेनापति ह्वीलर तो अपनी बात जल्दी खत्म करके विदा हुए, रह गये हिलर्स-डन;—उन्होंने बड़ी धीरता से काम लेकर—जब आपके अनुरोध की बात सुनी—कहा—'महाराज से कहना, इस वक्त हम लोग घबराहट में हैं। अगर एकाध दिन में शान्ति की खबर आ गई तो

हम जरूर उनके साथ भोजन करेंगे।' बस यह कहकर वे भी चले गये।"

नाना साहब ने जबर्दस्ती आशान्वित होकर कहा—"बस ?—और कुछ नहीं कहा ?"

"हाँ, एक बात और कही। कहा—"महाराज से कहना, हमारे बीबी-बच्चे उनके सिपुर्द हैं; कहीं उन्हें मेरठ के सिपाही उड़ा···हाँ, कहने लगे—उन लोगों की रक्षा का भार आप पर है··········· ·····।"

नाना साहब बोले—"तो भोज को स्थगित कर दिया जाय ?"

"जैसी महाराज की इच्छा ?"

"आगत सज्जनों को सत्कार-पूर्वक रखा जाय ?"

"अवश्य।"

"कल तुम फिर जाओ, और उन-लोगों से कोई ख़ास दिन पूछ आओ······।"

"जो आज्ञा !"

नाना साहब मन्त्री-महोदय के "जो आज्ञा" पर कान न देकर पहले सिलसिले में कहते रहे—"······कुछ नहीं जी, गदर, फदर कुछ नहीं है, व्यर्थ का भय है! इतने दिन अत्याचारी मुसलमानों के हाथों दुःख उठाकर तो हिन्दुस्तान को न्याय-शील कम्पनी के शासन में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, अब गदर का क्या काम ? हूँ! टुकड़-खोर सिपाहियों का यह साहस कहाँ ?"

नाना साहब ने यह कहते-कहते उपेक्षा से सिर हिला दिया !

अजीमुल्लाखाँ मन-ही-मन तिलमिला उठे। चेहरा सुर्ख हो गया। आवेश में भरकर कुछ कहने जा-ही रहे थे कि······

किसी ने कमरे में प्रवेश किया।

यह थी कर्नल टामसन की कन्या—सुन्दरी, तरुणी, युवती—जो

नाना साहब की अतिथि-मेमों में से एक थी।

जब उसने कमरे में कूदकर, तड़पकर, प्रवेश किया, तो उसका चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था, और नथने फूल रहे थे, और आँखों में अपमान के आँसू भरे हुए थे। एक रेशमी, कसा हुआ, ओछा गाऊन उसके शरीर पर था, पैरों में रबड़ के जूते, सिर पर गुलाब के ताजे फूलों की खुशनुमा टोपी और दायें हाथ में एक लम्बा चाबुक था।

उसने आते ही कड़ककर—"नाना साहेब—!"

महाराज और मंत्री—दोनों—चिहुँककर उसकी तरफ देखने लगे।

युवती ने अँग्रेजी में कहा—"नाना साहब, क्या आपने हमारी बे-इज्जती करने के लिए हमें यहाँ बुलाया है ?"

नाना साहब ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—"क्या हुआ मिस ? शान्त होकर बताओ।"

कहते-कहते उन्होंने युवती को बैठने का संकेत किया।

तने में मिस हैमिल्टन नाम की एक दूसरी युवती ने कमरे में प्रवेश किया, और वह आकर मिस टामसन के बराबर खड़ी हो गई। बोली—"नाना साहब, रामचन्द्रराव ने लिली (मिस टामसन) का बड़ा अपमान किया है। हम लोग आपके न्यौते पर भोज में शामिल होने आई हैं—अपना अपमान कराने नहीं !"

"रामचन्द्रराव ने ?" नाना साहब के मुँह से साश्चर्य निकला !"

"रामचन्द्रराव !!" अजीमुल्लाखाँ ने भी उसी लहजे में दोहराया।

रामचन्द्रराव—पेशवा बाजीराव के विश्वस्त मित्र, नाना साहब के आदरणीय सुहृद्, महा-पराक्रमी, बुद्धिमान—कैसे इन छोकरियों

का अपमान कर बैठे ! !

मिस हैमिल्टन ने आँखें पूरी खोलकर अपने स्वाभाविक शान्त, परन्तु प्रभावशाली, स्वर में कहा—"जी हाँ, रामचन्द्रराव ने बड़ी बुरी तरह लिली को अपमानित किया। अगर आप हमारी फरियाद न सुनेंगे तो हम सब को इसी दम बिठूर छोड़ देना पड़ेगा, और कानपुर जाकर इस घटना की शिकायत करनी होगी।

पाँच-छः मेम कमरे में और घुस रही थीं; उन्होंने भी मिस हैमिल्टन की बात का एक स्वर से समर्थन किया।

अजीमुल्लाखाँ होंठ काटने लगे। नाना साहब पीले पड़ गये। बड़ी मुश्किल से उन्होंने आगत महिलाओं को बैठने का संकेत किया।

गद्देदार कुर्सियाँ आगे खींचकर मेमें बैठ गईं ! लिली टामसन सबसे आगे—सबसे भिन्न सूरत बनाये—अकड़ाकर बैठी।

नाना साहब ने मिस टामसन से कहा—"आप बताइये !"

मिस टामसन ने गुर्राकर कहा—"क्या ?"

"आप बताइये," नाना साहब सहमकर बोले "क्या बात हुई ?"

"क्या पूछते हैं नाना साहब······?" मिस टामसन ने आँसू भरे नेत्र पूरे खोलकर इतना कहा और आगे कुछ कहने के पहिले ही मिस हैमिल्टन ने खुद बोलकर उसे रोक दिया। बोली—"नाना साहब, रामचन्द्रराव ने लिली के साथ बड़ा असभ्य व्यवहार किया।······उसने इन्हें किसानों, मालियों और नौकरों का नौकर बताया, और गालियाँ दीं !"

"गालियाँ······?" नाना साहब ने चिन्ता और आश्चर्य के समुद्र में डूबते हुए कहा—"रामचन्द्रराव ने गालियाँ······?"

"जी हाँ" मिस हैमिल्टन ने अपनी बात पर जोर देकर कहा—"बड़े घृणा-पूर्ण शब्दों में उसने लिली का तिरस्कार

किया……।"

अब की बार अजीमुल्लाखाँ बोले—"असल बात क्यों नहीं कहतीं मिस, तिरस्कार और गालियों की नौबत कैसे आई ??"

अजीमुल्लाखाँ की तीव्र और गम्भीर आवाज से मिस हैमिल्टन मानों दब गई, लिली टामसन चिहुँक पड़ी, अन्य महिलायें सम्हलकर एक दूसरे का मुंह ताकने लगीं। किसी से जवाब देते न बना।

नाना साहब बोले—"हाँ, मिस, शुरू से कहिए, इस अनर्थकारी वैमनस्य का सूत्रपात कैसे हुआ ?"

मिस हैमिल्टन ने पहले से अधिक धीमे स्वर में कहना शुरू किया—"लिली हवा-खोरी के लिये जाना चाहती थी। उसने बाग में बैठे हुए कुछ नौकरों से पालकी ले आने को कहा। नौकर-लोग पालकी ले तो आये, पर बाहर ले चलने को तैयार न हुए। लिली ने उन्हें धमकाया।……आप-ही सोचिये—बग़ैर धमकाये नौकर-लोग गुस्ताख हो जाते हैं, आज हमारी उपेक्षा करते हैं, कल आपकी इज्जत उतारने को तैयार हो जाएँगे……।"

नाना साहब ने गर्दन हिलाकर-कहा—"ठीक है, फिर ?"

"फिर क्या ? आखिर नौकर-ही थे; बेचारे तैयार हो गये। मगर, इतने में ही रामचन्द्रराव वहाँ आ पहुँचा। मैं भी वहीं खड़ी सब तमाशा देख रही थी। रामचन्द्रराव ने लाल-लाल आँखें निकालकर लिली को घूरा और डपटकर पूछा—'क्या बात है ?' लिली ने नम्रता-पूर्वक सब बात कही, उसने नौकरों से कहा—'तुम लोग अपना काम करो, इस दुष्टा की परवाह मत करो।'—फिर कड़ककर लिली से बोला—'जानती नहीं, तू इनकी (मालियों, नौकरों की) नौकरानी है। तुझे अपने मालिकों पर इस प्रकार हुक्म चलाते हुए लज्जा नहीं

आती ? इन लोगों के टुकड़े खाती है और इन्हीं के कन्धे पर चढ़ना चाहती है ? जा, भाग जा। जानती है, यह बिठूर है; कानपुर नहीं।' आदि-आदि···महाराज—अनेक अपमानजनक बातें उसने कहीं !"

कमरे में उपस्थित सब लोग आधी मिनट तक साँस रोके, मिस हैमिल्टन के उत्तेजित वक्तव्य के प्रभाव का अनुभव करते रहे। नाना साहब पर तो मानो किसी ने बर्फ का पानी उँडेल दिया; मुँह से आवाज निकलनी असम्भव हो गई।

आखिर अजीमुल्लाखाँ की गम्भीर वाणी ने निस्तब्धता भंग की—"आपकी बात मिस, समझ में नहीं आई······"

लिली टामसन ने अजीमुल्लाखाँ की बात काटने की धृष्टता की। कड़ककर बोली—"तो जनाब, इसका अर्थ है कि हम झूठ बोलते हैं ?···क्यों ?···यही मुझे भी आशा थी !···आप लोगों के पास मुझे न्याय नहीं मिल सकता।—चलो भाई इसी दम कानपुर के लिये कूच करते हैं; यहाँ हम लोगों का एक मिनट भी ठहरना मुनासिब नहीं है।"—यह कहते-कहते वह उठने का उपक्रम करने लगी।

नाना साहब ने आग्रह-पूर्वक लिली टामसन को बैठाया और अजीमुल्लाखाँ से कहा—"हाथ कंगन को आरसी क्या; क्यों न रामचन्द्रराव को बुलाकर सब बात पूछ ली जाय ?" फिर मन्त्री की स्वीकृति पाकर, उन्होंने पहरेदार को आवाज दी और रामचन्द्रराव को बुला लाने की आज्ञा दी।

रामचन्द्रराव आये। तवे-सी फूली हुई छाती, फौलाद के डण्डों-सी कलाइयाँ, पत्थर के खम्भे-से पैर, अधपकी दाढ़ी-मूछों से भरा हुआ शेर का-सा चेहरा, उन्नत ललाट, और बहुत बड़ा सिर लिये हुए उन्होंने कमरे में आकर बारी-बारी से नाना साहब और अजीमुल्लाखाँ की तरफ देखा, और तब उपस्थित मेमों पर एक

उचटती हुई नजर डाल, म्यान में पड़ी तलवार का मूठ धीरे-से छू, छाती निकालकर, गर्दन फुला कर शान के साथ खड़े हो गये।

सबकी आँखें एक मिनट-तक इस नर-केहरि पर अटकी रहीं। फिर नाना साहब ने कठोर होकर कहा—

"रामचन्द्रराव···!"

"जी ? !"

"यह मैं क्या सुन रहा हूँ ?"

"क्या महाराज ?"

"तुम जानते हो, ये महिलाएँ हमारी अभ्यागत हैं ?"

"जी महाराज, जानता हूँ।"

"तुम जानते हो, अभ्यागत कितना आदरणीय होता है ?"

"जी महाराज, जानता हूँ।"

"बोलो फिर" नाना साहब ललकार कर बोले—"तुमने मिस टामसन का अपमान किस अधिकार पर, और क्यों किया ?"

रामचन्द्रराव ने एक बार घृणा के साथ तिरछी नजरों से मिस टामसन को देखा, और उसकी अकड़ देखकर धीरे से दाँत निकालते हुए नाना साहब से कहा—"महाराज मैंने जो किया, खूब सोच—समझकर, सब कुछ अपने उत्तर-दायित्व पर किया। मैंने वही किया, जो मेरी स्थिति में कोई भी स्वाभिमानी मनुष्य करता। मैंने जो कुछ किया—मेरी जगह आप होते तो भी वही करते, मन्त्री जी होते तो उससे भी आगे कुछ करते। और उनसे अधिक स्वाभिमानी कोई होता, तो उससे भी आगे करता। मेरी बेबाक और न्याय पूर्ण बात को यह अनुभव-शून्य, अल्हड़ छोकरी चाहे अपमान समझ ले, पर मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ, कि इस बच्ची से मेरा कोई भी व्यक्तिगत विद्वेष नहीं हैं, और मैंने अपमान पूर्ण समझकर कोई भी बात इस से नहीं कही थी।"

रामचन्द्रराव की गरज से सब दहल गये। केवल अजीमुल्लाखां के माथे पर उत्साह और हर्ष की शिकन दिखाई पड़ी। उन्होंने कहा—"रामचन्द्रराव, सब बात एक सिरे से कहो। और सच—सच कहो।"

"सुनिये," रामचन्द्रराव ने कहा—"बाग के कुछ माली, और नौकर अपने देहाती किसान—मित्रों सहित आज बसन्तोत्सव मना रहे थे। एक बरस के बाद बेचारों को यह हर्ष का दिन नसीब होता है। सब लोग सुख में निमग्न थे। इतने में यह नादान लड़की वहाँ आई, और उनमें से दस-बारह को अपने पास बुलाया, और पालकी बाहर निकालने का हुक्म दिया। बेचारों को बुरा तो लगा, पर बिना एक शब्द--कहे पालकी निकाल लाये। तब इस लड़की ने कहा—'हम पालकी में बैठती हैं, तुम-लोग इसे उठाकर जंगल चलो।' महाराज ने उनको आज की छुट्टी दी है, वे लोग अपनी छुट्टी का इस प्रकार बलिदान करने को राजी न हुए, गिड़गिड़ाकर अपनी असमर्थता प्रकट की, और उन्होंने निवेदन किया—'यदि आपकी आज्ञा हो, तो पालकी के लिये बाहर से मजदूर बुला दिये जाएँ'। बस इतनी, बात सुनकर ही इस लड़की का जवान खून खौल उठा, और उसने हाथ के चाबुक से उन गरीबों की खाल उधेड़नी शुरू कर दी। मैं थोड़ी दूर परे खड़ा सब तमाशा देख रहा था। जब बेचारे माली और किसान पिटते-पिटते बिलबिलाने लगे, तो मैंने आगे बढ़कर इस अत्याचार में बाधा डाली।......बस, यही घटना है। इसी पर यह लड़की तुनक कर इस तरफ भाग आई।"

नाना साहब ने सब सुनकर मिस टामसन की तरफ देखा, और उसे कुछ बोलता हुआ न देखकर रामचन्द्रराव से कहा—"तुमने इनको गालियाँ नहीं दीं, और यह नहीं कहा कि नौकर लोग

तुम्हारे मालिक हैं, और तुम इन लोगों की नौकर हो, और इनका टुकड़ा खाती हो ?"

रामचन्द्रराव ने धीरे से खखारकर गला साफ किया, और अपने स्वाभाविक गम्भीर स्वर में कहा—"गालियों की बात बिल्कुल झूठ है। यह कन्या है। उस रूप में मैं इसे अपनी कन्या के समान समझता हूँ, और समझता हूँ कि इसको गाली देकर स्वयं अपनी कन्या को गाली दे रहा हूँ। कन्या को गाली देना महाराज कापुरुष का काम···है।"

"अच्छा," नाना साहब ने टोका—"तुमने उन्हें नौकरों का नौकर तो बताया; या इससे भी इन्कार करते हो ?"

"देखिये," रामचन्द्रराव ने ग्लानि-युक्त होकर कहा—'मेरे मुँह से ऐसी बातें नहीं निकल सकतीं। आप उन्हें दोहराइये भी न। झूठी बात सुनने के मेरे कान आदी नहीं हैं। इस पागल लड़की ने बड़ी खूबसूरती से अमृत को विष बनाकर आपके सामने पेश किसा है। मैंने जाकर इसे नम्रता-पूर्वक रोका। इसने चाबुक रोककर अपनी स्वेच्छा-चारिता में बाधक बनने वाले की—मेरी—तरफ सरोष देखा, और मैं लाचार होकर कहता हूँ महाराज, एक बार इसने हाथ का चाबुक मुझे लक्ष्य करके ऊँचा किया, फिर मैंने क्या किया, महाराज जानते हैं ?—मैंने इसे अतिथि समझकर केवल इसका ऊँचा उठा हुआ चाबुक पकड़ लिया, और कहा–'बेवकूफ ! होश में आ।' इस उदण्ड बालिका ने मेरे व्यवहार को अपमान समझा शायद इसीलिये कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ—क्यों मिस टामसन ?—और दाँत पीसकर चिल्लाते हुए कहा—'हट जाओ सामने से सूअर, तुम हमारे बीच में क्यों बोलते हो ?' मैंने जबाब दिया—'नादान, मैं तुझे याद दिलाना चाहता हूँ, कि यह बिठूर है; कानपुर नहीं, ये नौकर नाना साहब के हैं; टामसन के नहीं,—

और इनमें से कई इसी प्रकार अतिथि होकर आये हुए हैं, जिस प्रकार तू ।' इस पर इसने कहा—'ये सब— लोग गुस्ताख हैं, बदमाश हैं, मैं इनको खूब पीटूँगी, तुम जाओ ।' इस पर किञ्चित् हँसकर मैंने कहा – 'ये बदमाश और गुस्ताख तुम्हारी नजरों में हेय और तिरस्करणीय हैं ! बुद्धिमान् बन बेटी । जरा उदार होकर विचार—इन्हीं 'गुस्ताख और बदमाश' किसानों-द्वारा तेरा हमारा पेट पलता है, इन्हीं 'बदमाश और गुस्ताख' किसानों की रोटी छीनने के लिये, तू, तेरा बाप और तेरी जाति को लोग हज़ारों मील से दौड़कर यहाँ आये हैं। इतना सुनकर यह मूर्ख लड़की और भी उत्तेजित हो उठी, और बोली—'मैं इनको खूब पीटूँगी । इन्होंने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है । मेरी पालकी उठाकर नहीं ले चल रहे हैं।' इसकी इस उच्छृंखलता पर मैं कुछ क्रुद्ध हो गया और कहा —'लड़की, अगर तुझे ज्यादा सैर का शौक है, तो अब्बा-जान को लिखकर कानपुर से गोरों का एक दस्ता मँगवा ले। जा, भाग, ये लोग नहीं जायेंगे ।'......बस महाराज यही बात थी । इसमें एक अक्षर भी असत्य नहीं है । अगर हो, तो यह लड़की मेरे सामने कुछ कहने का साहस करे ।"

रामचन्द्रराव ने यह कहते-कहते मिस टामसन पर एक थर्रा देने वाली नजर फेंकी, और चुप हो गये।

नाना साहब ने देखा—मिस टामसन पसीने-पसीने हो गई है। जवाब कुछ बन नहीं पड़ रहा है। मेमों में हलचल मच गई है। और आँखों-आँखों में संकेतकर, वे लोग एक साथ उठने की तैयारी कर रही हैं ।

अनर्थ हुआ चाहता था !...अचानक....

नाना साहब ने बहुत रूखे, कृत्रिम और कठोर लहजे में कहा—"रामचन्द्रराव, तुम इतने बुद्धिमान् होकर भी यह बात

भूल गये कि मिस टामसन अतिथि हैं – तुम्हारी अपनी कन्या नहीं, जिससे इस प्रकार बात-चीत की जाय !"

रामचन्द्रराव ने कहा – "गलत है। मैंने अतिथि समझकर ही नम्र व्यवहार किया। अगर मेरी अपनी कन्या होती तो जानते हैं महाराज मैं क्या करता ? – पहले दोनों कान पकड़ता, फिर दो तमाचे इस गाल पर, और दो इस पर लगाता (अपने दोनों गालों पर बारी-बारी हाथ लगाया) और फिर शाम को घर ले जाकर, प्यार से मनाकर, उसे रोटी खिलाता। अतिथि समझकर ही मैंने पहली बार अपने क्रोध का तिरस्कार और अपनी आत्मा पर बलात्कार किया !"

सारा कमरा कुछ क्षणों के लिए कब्रिस्तान की तरह निस्तब्ध हो गया। नाना साहब निरुत्तर हो गये। मेमें पत्थर की पुतली-सी जहाँ-की-तहाँ रह गईं। अजीमुल्लाखाँ मुँह फिराकर थोड़ा-सा मुस्करा दिये— मानो उन्होंने कोई आत्मिक आनन्द और गौरव लाभ किया।

सन्नाटा अब की बार भी अज़ीमुल्लाखाँ द्वारा ही तोड़ा गया। उन्होंने मिस टामसन की तरफ देखकर कहा—"क्या इनकी सब बातें ठीक हैं मिस ?"

मिस टामसन ने दोनों होठ सिकोड़कर नजाकत के साथ भवें सुकेड़ लीं, और अजीब तरह से सिर में झटका देकर मिस हैमिल्टन की तरफ मुंह फेर लिया।

मिस हैमिल्टन ने कहा—"दीवान साहब, आप यह पूछकर एक प्रकार से हमारा अपमान कर रहे हैं, और आपके प्रश्न का मतलब यह है कि आप रामचन्द्रराव को सच्चा निरपराध समझ रहे हैं।"

अजीमुल्लाखां ने माथे पर शिकन डालकर कहा—"मिस, यह आपका कुतर्क है। मैं आपसे केवल एक प्रश्न पूछता हूँ। मैं

रामचन्द्रराव को अभी न अपराधी कह सकता हूँ, न निरपराधी। अगर आपके साथ उसने किसी प्रकार अशिष्टता की है तो अवश्य उसे दण्ड मिलेगा। उसके अपराध की मीमांसा करने में आपकी यह जल्दबाजी घोर सन्देह-जनक है यह समझ रखिये।"

मिस हैमिल्टन सहमकर चुप रह गई।

अबकी बार एक अधेड़ मेम बोली--जिसकी एक आँख पर काला चश्मा लगा हुआ था और जिसकी चौड़ी टोपी पर हल्की सुर्ख पतली नकाब उल्टी हुई थी—"जनाब दीवान साहब, आपके इजलास में मासूम लड़कियों से जैसी असह्य और अपमान-जनक जिरह की जा रही है—वैसी, हमारी तरफ की किसी विलायत में नहीं की जाती। आप जानते हैं, रामचन्द्रराव से लिली का कोई पुराना वैमनस्य नहीं है। इस प्रकार के उलझे हुए और घबरा देने वाले प्रश्नों का उत्तर देना इन बच्चियों का काम नहीं है। रामचन्द्रराव आपका मुंह-लगा है, इसी-लिए वह इतना गुस्ताख है। अगर आप उसे मुनासिब सजा न देंगे, तो इस दुर्घटना के विरोध-स्वरूप हम-लोग-सब बिना खाये पिये, इसी-समय कानपुर चली जायेंगीं, और नाना साहब पूरी तरह इस घटना के जिम्मेवार होंगे!"

रामचन्द्रराव की आँखें लाल हो गईं, अजीमुल्लाखाँ के माथे पर बल पड़ गये, नाना साहब के मस्तिष्क में अनेक भावनाओं का सम्मिलित तूफान उठने लगा।

गले का थूक सटककर नाना साहब बोले—"मैडम, नाराज होने की जरूरत नहीं है। आप देख रही हैं, अभी तक मैंने कोई निर्णीत—मत नहीं दिया है। मैं आप सबको, मिस टाम-सन को भी—नम्रता पूर्वक विश्वास दिलाऊँगा—कि उचित न्याय किया जायगा—दीवान साहब उचित न्याय के लिये मुझसे अधिक उत्सुक हैं। वे जो पूछें-उसका उत्तर आप लोग

निर्भीकता-पूर्वक दें । मुझ पर आपका यह बड़ा उपकार होगा ।"

नाना साहब के संकेत पर अज़ीमुल्लाखाँ ने पुनः प्रश्न किया—"मिस टामसन, रामचन्द्रराव ने जो बातें कहीं, क्या वे ठीक हैं ?"

मिस टामसन ने बाँया सीना उभारकर और बाँयीं आँख जरा दबाकर सरोष कहा—"दीवान साहब, आप मुझे अपनी झंझटी जिरह में फाँसना चाहते हैं – मैं खूब समझती हूँ । एक बात बार-बार कहने से कोई लाभ नहीं । जो कुछ मुझे कहना था—कह चुकी । अगर मैं सच्ची हूँ—तो अपराधी को सज़ा दीजिये, अगर झूठी हूँ, तो हम लोगों को विदा दीजिये । देखें, हम लोग कानपुर जाकर क्या कर सकती हैं ।"

उसी वक्त उस अधेड़ स्त्री ने एक नया तर्क पेश किया—"दीवान साहब, अगर मानें कि लिली झूठी है, और रामचन्द्रराव सच्चा है, तो क्या उसका व्यवहार अपमान-जनक नहीं हुआ ? एक बालिग, समझदार लड़की को 'नादान,' 'बेवक़ूफ़' आदि शब्दों से सम्बोधित करना, और टुकड़-खोर की गाली देना तथा नौकरों के सामने ही उनकी रोटियों से हमारा पेट पलना बताना, और सबके ऊपर नाना साहब और आपके सामने ही इस प्रकार उद्दण्डता पूर्वक तमाचे मारने को कहा—क्या उसको अपराधी और दण्डनीय प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त नहीं है ? मेरी समझ में नहीं आता—आप बड़े भारी न्याय-प्रिय बनने का ढोंग करते हुए भी कैसे इस प्रकार पक्ष-पात से काम ले रहे हैं, और असहाय स्त्रियों का अपमान करने वाले-को दण्ड देते हुए क्यों हिचकिचा रहे हैं ! हमारी विलायत में यह शख्श होता—तो कम-से-कम तीन वर्ष की जेल का दण्ड पाता ।"

इस धारावाहिक जोशीले भाषण के उत्तर में अजीमुल्लाखाँ ज़रा

उत्तेजित होकर बोले—"मैडम, आप लोग हम पर रोब जमाकर न्याय का अन्याय नहीं कर सकतीं । रामचन्द्रराव से जितना मैं परिचित हूँ—आप लोगों में से उतनी कोई नहीं । मैं उसके स्वभाव को जानता हूँ । उसने मिस टामसन से जो कहा—बिल्कुल स्वभाविक और क्षन्तव्य । मिस टामसन का यह सरासर अन्याय था—कि छुट्टी पाये हुए नौकरों और उनके अतिथि-जनों को मारें-पीटें, और···"

अधेड़ मेम लाल चेहरा बनाकर अपनी कुर्सी से उठ खड़ी हुई, चिल्लाकर बोली,—"यहाँ हमारा न्याय नहीं होगा । सब लोग उठो, इसी दम कानपुर चलते हैं ।······नाना साहब, आपको शीघ्र-ही इसका फल भोगना पड़ेगा !"

सब मेमें—एक साथ खड़ी हो गईं, और नाना साहब की ओर सक्रोध देखते हुए जाने को उद्यत हुईं ।

नाना साहब भयभीत होकर खड़े हो गये, और जोर-से बोले—"मैडम, आप लोग बैठें। आपका इस प्रकार चला जाना मेरे साथ आपका बड़ा अन्याय होगा । रामचन्द्रराव अपराधी है, मैं उसे दण्ड दूँगा ।"

यह कहते-कहते नाना साहब दर्वाजे पर जा खड़े हुए ।

सब मेमें—एक-एक करके—बैठ गईं ।

नाना साहब आकर कुर्सी पर बैठे; माथे का पसीना पोंछा और दो-तीन बार लम्बी साँसें लीं, इसके बाद मेमों को लक्ष्य कर कहा—"मैं सब सुन चुका हूँ । रामचन्द्रराव अपराधी है । मैं आप से पूछता हूँ—आप अब क्या चाहती हैं ?"

सब तरफ से आवाज आई—"न्याय ! न्याय !! न्याय !!!"

नाना साहब ने कहा—"मैं मिस टामसन से प्रार्थना करूँगा कि वे रामचन्द्रराव को क्षमा करें ।"

मिस टामसन ने होठ सिकोड़कर, आँखों की पुतलियाँ

खींची और झटके से सिर उठाकर अपराधी की तरफ देखकर कहा "मुझे अफसोस है,—मैं ऐसे गुस्ताख आदमी को माफी नहीं दे सकती।"

नाना साहब के नेत्र कुछ क्षणों के लिए झुक गये, तब बिना रामचन्द्रराव या अजीमुल्लाखाँ पर दृष्टि-पात किए—गद्गद् कण्ठ और अश्रु-पूर्ण नेत्रों से निर्णय दिया—"रामचन्द्रराव को तीन वर्ष का कारागार—दण्ड देता हूँ।"

रामचन्द्रराव ने सिर झुकाकर कहा—"जो आज्ञा।"

अजीमुल्लाखाँ ने कहा—"छिः।"

मेमों ने खुश होकर तालियाँ बजाई।

२

धूँधूपन्त नाना साहब को सब जानते हैं। बाकी पात्रों का परिचय कराने के सिए कुछ बातों का उल्लेख कर दें।

नाना साहब अन्तिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी थे। भाग्यहीन नाना साहब अपनी पैत्रिक रियासत से तो तभी वंचित हो गए थे, जब बाजीराव पूना के सिंहासन से च्युत किये गये,—और बाजीराव के मरते ही उन्हें वह पेंशन भी मिलनी बन्द हो गई, पेंशनर बाजीराव के पुत्र की हैसियत में वे जिसके अधिकारी थे।

बाजीराव के साथ-ही-साथ नाना साहब भी बिठूर आ गये थे। भारतीय अंग्रेज-अफसरों से उनका बड़ा मेल-जोल था। पेंशन बन्द होने का समाचार सुनकर नाना साहब बड़े चकित

हुए। अफसरों से, तत्कालीन वायसराय से, और अन्य अधिकारियों के सामने उन्होंने अपने अधिकार का रोना रोया, परन्तु मिला क्या ? केवल आश्वासन, और अंग्रेजों की स्वभाव सिद्ध सहानुभूति। हाँ कुछ अंग्रेज मित्रों ने एक आशाप्रद सलाह दी—कि नाना साहब अपना एक वाक्पटु वकील लन्दन भेजें, जो नाना साहब के अधिकारों के लिए पार्लियामेंट में जाकर लड़े। नाना साहब ने इस सलाह को मान लिया, और अपने सुयोग्य मन्त्री अज़ीमुल्लाखाँ को विलायत भेजा।

अज़ीमुल्लाखाँ ग़रीब माँ-बाप के बेटे थे। परन्तु अपने अध्यवसाय, शरीर-सौंदर्य, पाण्डित्य और महत्वाकांक्षा के बल पर नाना साहब के मन्त्री-पद पर पहुँच गये थे। अज़ीमुल्लाखाँ की माता बड़ी विदुषी थीं। उन्हीं के सदुपदेशों ने अजीमुल्लाखाँ के हृदय में आरम्भ-से-ही देश-भक्ति की लगन फूँक दी थी। बाल्य-काल के इस प्रभाव ने आगे चलकर कैसा विराट-रूप धारण किया—यह प्रत्येक इतिहास प्रेमी को मालूम है। हम उस विशाल-रूप का थोड़ा-बहुत दिग्दर्शन कराने की चेष्टा करेंगे।

नाना साहब अंग्रेजों का बड़ा मान करते थे। हमेशा दस-पाँच अंग्रेज उनके अतिथि रहते थे। पेन्शन बन्द हो जाने पर भी नाना साहब अपनी ज़िन्दा-दिली और आतिथ्य-प्रियता से बाज न आ सके। बहुत से लोग कहते हैं—कि अंग्रेजों की खातिर तवाज़ः वे इसलिये करते थे, कि विलायत लौटकर वे लोग उनकी पेन्शन के लिए आन्दोलन और सिफ़ारिश करें, परन्तु यह ग़लत है। नाना साहब बड़े प्रेमी आनन्दी जीव थे। खुद खाने की अपेक्षा दूसरे को खिलाने में उन्हें ज्यादा मज़ा आता था। बचपन में भी वे पचास-पचास बालकों को हर हफ्ते दावत दिया करते थे। बड़े होने पर उनकी इस आदत

ने भी बड़ी शक्ल अख्तियार की, और परिणाम स्वरूप दर्जनों अतिथि रोज़ उनकी रसोई का स्वाद चखते थे। हाँ, अंग्रेजों पर उनकी विशेष कृपा या श्रद्धा थी। इसका कारण यही था—कि अंग्रेजों का स्वभाव, व्यवहार, पहिनावा, और उनकी बात-चीत, सभ्यता और बुद्धिमता—सब बातें—एक नवीनता लिए हुए थीं, और नाना साहब की हैसियत वाले कम्पनी के नौकर सब अंग्रेज ही थे।

अंग्रेजों का अधिक आदर करने का एक क़ारण और भी था। नाना साहब राज-काज के मामले में मुसलमानों को नितान्त अयोग्य मानते थे, और बहादुरशाह का पतन, समकालीन न्याय में धाँधलेबाजी, शासन में अव्यवस्था और मुसलमान कर्मचारियों के असह्य अत्याचार, ये सब बातें ऐसी थीं, जिन्होंने एक नाना साहब ही नहीं, अधिकांश हिन्दुओं के मन में यह धारणा पैदा कर दी थी—कि तत्कालीन गवर्नमेंट (मुग़लिया सल्तनत) का पूर्णरूप से पतन होकर उसकी जगह किसी नई सरकार की स्थापना होना उनके और उनके देश के लिए श्रेयस्कर होगा। अंग्रेज़ों की कृत्रिम और आकर्षक मृदुलता और छल-पूर्ण न्याय-प्रियता, मुकाबले में लोगों के सामने थी। अंग्रेज इसी कारण, नाना साहब और उनके जैसे विश्वास वाले; आदमियों के लिए आदरणीय और श्रद्धा-भाजन थे। अस्तु—

अज़ीमुल्लाखाँ योरुप गये। उन्होंने अत्यन्त योग्यता के साथ नाना साहब के पक्ष में वकालत की, आन्दोलन किया पार्लियामेंट के सामने प्रभावशाली भाषण दिया। परन्तु सब, व्यर्थ!—कोई सुनवाई न हुई!—और-तो-और जिन अंग्रेज़ों ने भारत में महीनों नाना साहब के टुकड़े चाबे थे, उन्होंने भी अज़ीमुल्लाखाँ से आँखें चुराई और किसी प्रकार की सहायता देने से

साफ इन्कार कर दिया।

उस समय समग्र योरुप में, क्रीमिया-युद्ध के कारण, अशांति के भयंकर बादल मंडरा रहे थे। योरोप के सब बड़े-बड़े देश इस युद्ध में भाग ले रहे थे। साहसी अज़ीमुल्लाखाँ अपने असल काम में अकृतकार्य होकर जब भारत लौटने लगे, तो इस भीषण युद्ध का कुछ दृश्य देखने का लोभ न त्याग सके।

अज़ीमूल्लाखाँ संग्राम-क्षेत्र में गये। वहाँ जाकर उन्होंने जो देखा—उससे उनकी आँखें खुल गईं, अंग्रेजों के बल और दृढ़ता की पोल खुल गई। अपने बर्बाद देश का भविष्य खुले-पृष्ठों की तरह उनकी आँखों आगे आ गया। उन्होंने देखा—भारतवर्ष से आया हुआ करोड़ों मन अनाज संग्राम भूमि में जमा है। उसी के बल पर अङ्गरेज, फ्रांसीसियों को मानों मोल खरीदे हुए थे। उसी के बल पर वे युद्ध-भूमि में अपनी शक्ति अक्षुण्ण बनाये हुए थे और भारतवर्ष से छीनी हुई रोटी के बल पर ही उन्होंने योरोप-भर में अपना आतंक जमा रखा था।

तब अज़ीमूल्लाखाँ की आँखों—आगे लन्दन के वैभव-शाली होटल और भारत के गरीब, हल चलाने वाले, फटे हाल, किसानों के चित्र आने लगे। तब अज़ीमुल्लाखाँ ने देश की जड़ में लगे हुए कीड़े को पहचाना, और भारत का खून पीने वाले अंग्रेजों को जूँ की शक्ल में देखा।

माता के उपदेशों की वे छोटी-छोटी लकीरें—वे धूमिल भाव—एकाएक प्रज्वलित हो उठे, पूर्व-जन्म के संस्कार और मातृ-भूमि की रक्षा करने का संकल्प एक-साथ उदय हुए। अज़ीमुल्लाखाँ ने सब-कुछ देखा—समझा—और धधकती हुई युद्ध-मूमि में असंख्य नर-मुण्डों और रक्त की भीषण वर्षा के बीच खड़े होकर उस वीर ने मातृ भूमि को स्वतन्त्र करने की भयंकर दृढ़ प्रतिज्ञा की, और क्रांति

और विद्रोह की प्रचण्ड भावनाएँ लेकर उसने भारत में पदार्पण किया।

इधर भीतर-ही-भीतर भारत में क्राँति की आग सुलग रही थी। अनेक दूर-दर्शी युवक अंग्रेजों की चाल समझकर प्रतिकार में व्यस्त थे। परन्तु आग अभी जमीन के भीतर-ही थी, अधिकार-मद में चूर अँग्रेज उसे न देख सके। और भी लोग—जो अँग्रेज़ों को अपना और देश का कल्याण करने वाले, मित्र, और न्याय और शासन में राम के समान समझते थे—इस छिपी हुई आग को नहीं देख रहे थे,—न उन्हें देखने की फुरसत थी, न कामना।

परन्तु अज़ीमुल्लाखाँ ने इसे देखा, और सन्तोष की साँस ली। दोनों तरफ एक-ही लपट थी, क्राँतिकारी उनसे मिले, वे क्राँतिकारियों से। उनके लिए काम करने को—बीज बोने को—क्षेत्र मिल गया, क्राँतिकारियों को आगे बढ़ने का साधन। अज़ीमुल्लाखाँ के सहयोग ने क्राँति-योजना में भयंकर तेजी पैदा कर दी, और बड़ी सतर्कता और बड़े साहस के साथ एक बड़ी जबरदस्त देशव्यापी क्राँति का षडयन्त्र होने लगा।

कम्पनी की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। देश के अधिकांश भाग पर—लार्ड डलहौजी की संकुचित नीति के कारण—यूनियन जैक फहराने लगा था। अँग्रेजों का सेना-बल भी खूब सम्पन्न हो गया था—और अज़ीमुल्लाखाँ ने देखा—अँग्रेजों की गति इसी प्रकार बढ़ती रही तो बहुत शीघ्र देशकी प्रत्येक नस उनकी चुटकियों में आ जाएगी।

काम बड़ी तेजी से शुरू हुआ। प्रत्येक शहर में षड्यन्त्र समिति के केन्द्र स्थापित किए गए। चुपचाप प्रचार होने लगा। हजारों युवक तीव्र उमङ्ग में भरकर क्रांति के समुद्र में कूद पड़े। प्रत्येक छावनी में समिति के सदस्य सिपाहियों के वेष में जा घुसे, और चुपचाप, बड़ी शीघ्रता से अंग्रेजी प्रभाव अपनी

कमर से उतार फेंकने के लिए 'देश सेवा में तैयार होने लगे।'

प्रचार का काम सेनाओं में बड़ा सफल हुआ। समस्त उचितानुचित उपायों से सिपाही अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काए जाने लगे। बन्दूकों के कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी की बात भी इन्हीं क्रांतिकारियों के उपायों में से एक उपाय था।

अंग्रेज भी बेवक़ूफ नहीं थे। उन्होंने भी सेना का रुख देखा। यह बात कुछ कम चकित कर करने वाली नहीं थी। हर जगह के सिपाही अफसरों के प्रति सन्देह युक्त हो गए, हर एक सेना के सिपाही अंग्रेजों को अविश्वास और अश्रद्धा की नज़र से देखने लगे। कैसे यह काया-पलट हो गई?—हमारा मृदु कपट भी किस प्रकार इन पर खुल गया?—अंग्रेज यही सोचने लगे। परन्तु देश में क्रान्ति, अशान्ति, और असन्तोष की आग इतनी तीव्र हो उठी है—इसकी कल्पना किसी अभागे ने न की!—उनके खून के प्यासे उनके चारों तरफ़ घूमते हैं—इसका ध्यान किसी बुद्धिमान को न हुआ।

इस क्रांति, इस विश्वास, इस अश्रद्धा में अज़ीमुल्लाखाँ का कितना हाथ था—इसकी कल्पना कोई न कर सका। हाँ, उनकी वाक्यपटुता, और भीतर की आग के फल-स्वरूप पैदा होने वाली तेजस्विता और प्रचण्डता के कारण अंग्रेज उनसे दबते जरूर थे। अज़ीमुल्लाखाँ अन्य भारतीयों की भाँति अंग्रेजों से दबते न थे। योरोप में, अंग्रेजों के झुण्ड में खड़े होकर उन लोगों को फटकारने का साहस करने वाले अज़ीमुल्लाखाँ भारतीय अंग्रेजों में किसी असाधारणता की धारणा न कर सके। उनके इसी दबंग-पन और निर्भय-स्वभाव के कारण अंग्रेज उनका प्रभाव मानते थे, और सच कहें, तो इसी कारण इस बात की वे लोग कल्पना न कर सकते थे कि वे कैसी भयंकर

क्रांति-योजना का संचालन कर रहे हैं।

बिठूर कानपुर से छः मील की दूरी पर स्थित है। अज़ीमुल्लाखाँ, नाना साहब, उनका कुटुम्ब, उनके आठ हजार नौकर, सब लोग वहीं रहते थे। अज़ीमुल्लाखाँ बड़ी सतर्कता से सब काम करते थे। गदर-समिति में उनका आसन कितना गुरु है— यह वे समझते थे। स्वयं वे-सिवा मौखिक आज्ञा देने के कुछ नहीं करते थे। पर उनकी इन मौखिक आज्ञाओं पर ही समग्र देश ग़दर के लिए तैयार हो गया।

कानपुर में ग़दर-दल का संगठन खूब सन्तोष-जनक था। टीकमसिंह, दामोदरदास और अन्य अनेक ग़दर-दल के सदस्य फौजों में घुस गए थे। नाना साहब के भाई बलराव, बाबा भट्ट, ताँतिया टोपे और रामचन्द्रराव आदि अनेक देश-भक्त वीरों का गुट्ट बिठूर में तैयार हो चुका था, फौजों में विष फैल चुका था। सारांश सब कुछ तैयार था; केवल एक चिनगारी की कसर थी।

हाँ, अज़ीमुल्लाखाँ अपने एक प्रयत्न में असफल रहे। नाना साहब पर अपनी बातों का प्रभाव वे न डाल सके। नाना साहब किसी भांति अज़ीमुल्लाखाँ की ग़दर-पार्टी में शामिल होने को तैयार न दिखाई दिए। अज़ीमुल्लाखाँ ने खूब घुमा फिराकर उनके मन की थाह ली, पर नाना साहब उन्हें पूरे अंग्रेज भक्त दिखाई दिये। हारकर वे चुप हो गये, और मौक़े की बाट देखने लगे। अपने आतिथ्य सत्कार में व्यस्त भोले नाना साहब, अजीमुल्लाखाँ के विषय में वास्तविकता से परिचित न हो सके, न उन्हें कभी इसकी जिज्ञासा-ही हुई—यह बात बता देना जरूरी है।

जिस दिन मेरठ में ग़दर होना था, कानपुर के समस्त अंग्रेज अफसरों को नाना साहब ने उसी दिन का निमन्त्रण भेजा

था। यह सब बात अज़ीमुल्लाखाँ की कारस्तानी थी । इसी पर अंग्रेज कैद कर लिए जाते, उधर कानपुर पर कब्जा कर लिया जाता, और नाना साहब को मजबूर करके कानपुर का शासक नियत कर दिया जाता।

परन्तु जैसा सोचा था—वैसा न हुआ । तब तक तार-रेल का महकमा आज की तरह उन्नत नहीं था । और जितना था—क्रांतिकारी उसका पूर्ण उपयोग नहीं कर सकते थे। अतः न मालूम किसकी भूल से, अथवा सिपाहियों की उत्तेजना से मेरठ में निश्चित दिन से एक दिन पूर्व ग़दर की आग भड़क उठी। इतने विशाल गुप्त षड्यन्त्र में ऐसी भूल अथवा ऐसी उत्तेजना असम्भव भी नहीं है। अस्तु...

किस प्रकार नाना साहब का भोज असफल हुआ, और किस प्रकार क्या हुआ, और उसी समय क्या घटना हुई—यह सब कुछ पाठकगण पढ़ ही चुके हैं।

घटना का तारतम्य मिलाने के लिए हमारा इतना वक्तव्य पर्याप्त होगा। हाँ, इतना और कह दें, कि मेरठ के ग़दर का समाचार आने के एक सप्ताह बाद तक जब कानपुर में कोई दुर्घटना नहीं हुई, तो, नाना साहब के बार-बार अनुरोध करने पर अँग्रेज अफसरों ने पूर्व निश्चित तिथि के ठीक बीस दिन बाद उनके भोज में सहयोग देना स्वीकार किया।

नाना साहब का घर खूब सुरक्षित समझकर भयग्रस्त अंग्रेजों ने इतने दिन अपनी मेमों को वहीं छोड़े रक्खा।

मई का अन्तिम सप्ताह था। दिन-भर तेज धूप पड़ी थी। कच्ची सड़कों की सफेद धूल पीली पड़ गई थी। घास की पत्तियों के ऊपरी भाग झुलस गए थे। सूर्य की प्रखरता के कारण आकाश मानो धुल-कर—नीला-नीला चमक रहा था। दोपहर का क्रोध त्यागकर सूर्य मानो खिलखिलाकर भागा जा रहा था।

यह पगडण्डी बिठूर को गई है, जिस पर एक आदमी टट्टू पर चढ़ा धीरे-धीरे जा रहा है।

सवार जवान है। चेहरा और हाथ-पैर गठे-भरे हैं, परन्तु धूल-धूसरित होकर कांति-हीन हो रहे हैं। गर्मी और धूप के कारण परेशान है। गालों पर मिट्टी और पसीने की गन्दी लकीरें खिची हुई हैं। शरीर का पतला अँगरखा भी पसीने की अधिकता के कारण गीला, और मैला हो रहा है। बाईं तरफ—कोख के पास अँगरखा काफी उभरा हुआ है। अगर कोई सिपाही देखे—तो फौरन कहदे—पिस्तौल है।

टट्टू कद में छोटा-मगर चलने में तेज मालूम होता है। दूर की मंजिल मंमारे आता है, मगर चौकड़ी भरने का मौका आवे तो अब भी हिम्मत न हारे। बड़ी भक्ति के साथ—दोनों कान उठाये हुए, सीधा-साधा—चला जा रहा है—मानो चलता-चलता किसी दार्शनिक तत्व की गम्भीर विवेचना में लीन है।

टट्टू और सवार चलते-चलते एक जगह जाकर ठहर गये। जहाँ ठहरे—वहाँ एक पक्का कुआ-शिवालय था। कुए पर कठघरा और टूटा ढोल पड़ा हुआ था। शिवाले में सिवा चिमगादड़ों, कूड़े-कर्कट और सन्नाटे के कुछ न था।

जवान ने टट्टू के मुँह से लगाम निकालकर खुला छोड़ दिया,

ताकि स्वच्छन्दता-पूर्वक चर सके और कपड़ा बिछाकर शिवालय के बाहरी चौंतरे पर बैठ गया।

एक बड़ का पेड़ था। उसके पत्तों से लड़ती और शोर मचाती हुई हवा ठण्डी होकर जवान-तक आई, और उसका मूक धन्यवाद ग्रहण कर वापिस चली गई। जवान ने कुछ मिनट सुस्ताकर सामने–दूर तक—नजर फेंकी, और आप-ही-कहा—"अभी-तक नहीं!"

दो-चार मिनट और ठहर कर उसने कुँए की तरफ मुख किया, और ठण्डे पानी में खूब मल-मल कर नहाया।

कपड़े पहनकर उसने फिर सामने नजर फेंकी। अब की बार उसे कुछ दिखाई दिया। एक सवार घोड़ा दौड़ाता हुआ उसी तरफ आ रहा था।

मिनट-भर में सवार जवान के सामने आ खड़ा हुआ। एक मुसलमान था। घोड़े से उतर कर उसने जवान को सलाम किया। और एक पुर्जा उसके हाथ में रख दिया।

युवक ने पुर्जा पढ़कर कहा—"तुम्हारा नाम?"

मुसलमान ने सलाम करके कहा—"खाकसार...हमीद।"

"ठीक!" कहकर जवान ने टट्टू फिर कस लिया और उस पर सवार होकर मुसलमान के साथ बिठूर की तरफ चला।

मार्ग में युवक ने कहा—"दीवान साहब सानन्द हैं?"

हमीद ने कहा—"जी हाँ, मजे में हैं।"

"आजकल तो बिठूर में-ही हैं न?"

"जी हाँ; कल नाना सहाब कानपुर के फिरंगियों की ज्याफत करने वाले हैं, उसी की तैयारी में व्यस्त हैं।"

युवक "हूँ!" कहकर चिन्ता में डूब गया, फिर बोला—"तुम तो दीवान साहब के नौकर हो न?"

हमीद ने बड़े आडम्बर के साथ 'हाँ-हाँ में उत्तर दिया।

युवक ने पूछा—"टीकमसिंह को जानते हो?"

हमीद सोत्साह बोला—"जी हाँ, क्यों नहीं जानता ? जरूर जानता हूँ—टीकमसिंह; ताँतिया साहब, बाबा साहब, बाला जी, दामोदर दास—सब को जानता हूँ; (किंचित हँसकर) और आप को भी कुछ-कुछ जानता हूं।"

युवक ने जरा चमक कर हमीद का मुँह देखा, और आखिरी वाक्य सुनकर कुछ मुस्करा दिया। धीरे-से कहा—"देखो, खाँ साहब, जबान को इतनी आज़ादी न दो।"

हमीद ने जोश से उछलकर तलवार की मूठ छुइ, और कहा—"सरकार ज़बान को आज़ादी देने के पहले तलवार को आज़ादी दे चुका हूँ। यह होगी, और बदमाश फिरंगियों का सिर......"

जवान ने कड़े स्वर में कहा—"क्या बकते हो...?...देखते नहीं कैसा मौका है !"

हमीद सहमकर चुप हो गया, फिर दोनों में कोई बात न हुई।

बिठूर के बाहर एक कच्चा—परन्तु सुन्दर—घर था। हमीद और जवान यहाँ आकर रुके। घर के बाहर कोई निम्न-श्रेणी का व्यक्ति—शायद भँगी या चमार—खड़ा था। हमीद ने अपना घोड़ा और जवान का टट्टू उसके सिपुर्द किया, और दोनों अन्दर घुसे।

घर भीतर से भी बिल्कुल साफ-सुथरा, लिपा-पुता सुन्दर था। एक खुला सहन था, और सहन में एक निवाड़ का पलंग पड़ा हुआ था। हमीद ने युवक को आदर-सहित पलंग पर बैठाया और थोड़ी देर की छुट्टी माँगकर चला गया।

कोई दस मिनट बाद वह लौटा। एक हिन्दू, एक हाथ में काठ की चौकी, और दूसरे हाथ में जल का पात्र लिये उसके साथ था। युवक ने हाथ-मुंह धोया, कुल्ला किया और जूते निकाल कर भोजन के लिए तैयार हो गया।

एक ब्राह्मण भोजन का थाल और जल का लोटा रख गया। हमीद एक कुर्सी मँगाकर पलँग के पास ही बैठ गया।

भोजन करते-करते युवक ने कहा—',तो ज़ाफ़त कल है ?''

"किनकी ?—नाना साहब की ?'' हमीद बोला—

"हाँ कल शाम को चार बजे सब लोग आयेंगे और सात आठ बजे तक बिदा हो जायेंगे !''

"कुछ प्रबन्ध हुआ है ?'' धीरे से युवक के मुंह से निकला।

हमीद उदास हो गया। बोला—"जहाँ तक मुझे मालूम है, सरकार, नाना साहब राजी नहीं हैं।...पक्का हाल आपको हुज़ूर से ही मालूम होगा।''

युवक ने चौंककर कहा—"अरे हाँ, कब आयेंगे वे ?—उन्हें खबर तो कर दी गई होगी ?''

हमीद बोला—"जी हाँ, खबर तो उन्हें पहले से ही थी। सब कुछ—जो होता है—वे जानते हैं। फिर भी मैंने उनके पास खबर भेज दी है।''

इतने में किसी ने हमीद को बाहर से आवाज़ दी। हमीद गया और फौरन लौटकर बोला—"हुज़ूर अँधेरा होने पर खुद तशरीफ़ लायेंगे।''

युवक ने कुछ न कहकर चुपचाप भोजन समाप्त किया।

पाठक अगर युवक का परिचय जानने को उत्सुक हों,—तो हम उनसे प्रार्थना करेंगे—वे अधीर न हों; —युवक का परिचय न हम दे सकते हैं, न इसकी आवश्यकता है। हाँ इतना कहना है, कि युवक पश्चिमोत्तर-प्रदेश की ग़दर की पार्टी का एक असाधारण सदस्य है और किसी कारण वश अज़ीमुल्लाखाँ से मिलने आया है।

आठ बजे थे। अँधेरा हो गया था। बिठूर में सब जगह चिराग़ जल गए थे। युवक पलंग पर अध-लेटा, दोनों हाथ सिर पर बाँधे, किसी चिन्ता में डूबा था। हमीद वहाँ नहीं था। सहन के एक कोने में एक धीमी जलती हुई लालटेन

रखी थी।

इतने में कुछ आहट हुई। युवक चौंक कर सम्हल बैठा। आगे-आगे अज़ीमुल्लाखाँ—परिवर्तित वेश में—थे, और तेज़ लालटेन हाथ में लिए हुए पीछे-पीछे हमीद आता था।

युवक ने एक नज़र में अज़ीमुल्लाखाँ को पहचान लिया। उछलकर पलँग से उठ बैठा, और आगे बढ़कर बे-साख्ता अज़ीमुल्लाखाँ से लिपट गया—मानो लड़की है, जो बड़े दिनों बाद सुसराल से लौटकर माँ से मिली हो!

अज़ीमुल्लाखाँ ने प्रेम-पूर्वक कुछ देर युवक को गले से लिपटाये रखा, फिर दोनों आकर पलँग पर बैठ गए। हमीद लाल्टेन रखकर बाहर चला गया, और तलवार निकालकर दरवाजे पर घूमने लगा।

इधर युवक ने प्रेमाश्रु पोंछकर और गला साफ़ करके कहा—"भाई साहब, नाव मंझधार में डूबी जा रही है!"

अज़ीमुल्लाखाँ ने कुछ चिन्तित परन्तु शान्त, गम्भीर स्वर में कहा—"घबराओ नहीं बिरादर, हिन्दोस्तान आज़ाद होगा और होगा!"

युवक ने कहा—"भाई साहब, आपके भरोसे-ही सब काम हुआ, और आपकी तरफ़ ऐसी शिथिलता हुई। यह बड़ी निराशा की बात है। सब जगह एक साथ आग लगती तो अब तक अँग्रेजों के छक्के छूट जाते। मगर सब किया-किराया बेकार—सा हो गया। इधर पंजाब में भी समय पर कुछ न हुआ, इधर युक्तप्राँत और बंगाल में भी आग दबी-की-दबी पड़ी है; और इस तरह फिरंगियों की स्थिति दिन-दिन मज़बूत और प्रकृति सतर्क होती जा रही है। बताइये, क्या आशा की जाए?"

अज़ीमुल्लाखाँ सिर झुका कर धीरे-धीरे बोले—"पलीता

जल चुका है, आग भड़केगी और···तबाह हो जाएँगे !"

युवक ने अधीर होकर कहा—"मगर यह होगा कब भाई साहब ? किस तरह यह सब हो सकेगा ?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने उसी लहजे में कहा—"अधिक समय नहीं है। जल्द-ही सब कुछ हो जाएगा। जल्द-ही भारत-भूमि पर से इन पिशाचों का लोप होगा।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने यह कहते-कहते दाँत पीसकर मुट्ठियाँ कसीं।

उनकी उत्तेजना देखकर युवक उत्साहित हुआ, और उसने पूछा—"अच्छा, बतलाइये तो सही; आपने तो कहा था—मेरठ के साथ ही यहाँ पर ग़दर मच जाएगा, सेनाएँ बागी हो जाएँगी अँग्रेज अफ़सर कैद हो जाएँगे !—यह सब क्यों नहीं हुआ ? कैसे सारी योजना असफल हो गई ?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने कराहकर जोर-से जाँघ पर हाथ मारा—और कहा—"अफ़सोस ! सारा कौशल व्यर्थ गया !"

युवक जिज्ञासा-पूर्ण भाव से उन्हें ताकने लगा।

अज़ीमुल्लाखाँ ने शान्त होकर कहना शुरू किया—"असल में मेरठ की सेनाओं की जल्दबाजी ने सब चौपट कर दिया अगर एक दिन की देर हो जाती—मेरठ में एक दिन ग़दर और न होता—तो मेरा कौशल सफल होने में सन्देह न था।········ गलती मेरी-ही थी—जो मैंने इस विषय में कुछ पहले ही न सोचा।"

यह कहकर उन्होंने नाना साहब के भोज का सारा किस्सा युवक को सुनाया और पूछा—"मेरठ में यह गड़बड़ क्यों हुई ? क्या सेनाएँ हाथ में न रहीं ?"

युवक बोला—"नहीं, बात असल में यह हुई कि—अधिकारियों को सिपाहियों पर सन्देह हो गया, और हथियार लेने

का परामर्श होने लगा। सिपाही इससे बहुत बिगड़े—और अधीर होकर उन्होंने निश्चित तिथि से एक दिन पहले ही अफ़सरों को उड़ा दिया, और उसी दिन, नृशंसता के अवतार बनकर उत्तेजित मूर्खों ने शहर-भर में प्रलय मचा दी। अँग्रेज—मर्दों को गोली से उड़ा दिया, मेमों को तलवारों से चीर दिया, बच्चों को किरचों से छेद दिया, बंगलों को जला दिया, गिर्जों को तोड़ दिया और सारे शहर को तबाह करके उसीं दिन दिल्ली को प्रस्थान कर दिया! हम लोगों ने बड़ी कोशिश की—हत्या न हो—खून अधिक न बहाया जाए—बहुत-सों को बचाया भी—मगर कहाँ तक?—व्यवस्था न रही, और जिसके जी में जो आया—किया! अब तक सब लोग दिल्ली में है। दिन-दिन दिल्ली की सुरक्षित फसीलों के बीच सेना बढ़ रही है। वहाँ बूढ़े बहादुरशाह को तख्त पर बैठा दिया गया है, और उनके नाम पर सिपाही शहर में अशान्ति फैला रहे हैं। आप हत्यारों का सब प्रबन्ध करके अगर समय पर दिल्ली पहुँच जाते, तो यह कुछ भी न होता, और सब काम पूर्व-व्यवस्था के अनुसार ठीक उतर जाता!"

अज़ीमुल्लाखाँ ने सब सुनकर ठण्डी सांस ली। फिर धीरे-से कहा—"कोई पर्वाह नहीं, अब जल्द-ही सब काम होगा। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। परसों कानपुर पर हमारा कब्जा होगा......।"

युवक बोला—"निश्चय?"

अज़ीमुल्लाखाँ— "हाँ, निश्चय-ही ऐसा होने की आशा है। उसी दिन से तैयारी कर रहा हूँ। मेरठ की मूर्खता यहाँ के सिपाहियों में भी घुस न जाए, इसीलिए मेरा यहाँ ठहरना जरूरी था; वर्ना अब तक जरूर दिल्ली आ जाता। खैर...।"

युवक ने पूछा—"किस प्रकार काम होगा?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने फुसफुसाकर कहना शुरू किया—"जिस कमरे में मेहमानों के खाने का प्रबंध किया गया है, वह ज़रूरत के वक्त एक मज़बूत कैदखाना भी बन सकता है। ऐसा प्रबंध किया गया है, कि नाना साहब उनके भारतीय मित्र-मैं, बलराब, बाबा-भट्ट, ताँतिया टोपी, सब लोग बाहर आजाएँगे, और इस प्रकार आसानी से सब अँग्रेज अफ़सर कैद कर दिये जायेंगे। उसी वक्त कानपुर जाकर नाना साहब को गद्दी-नशीन कर दिया जाएगा।"

"नाना साहब तैयार हो गये हैं?"

"नहीं, षड्यन्त्र का उन्हें पता नहीं है। अंग्रेजों को कैद करने के बाद उन्हें गद्दी पर बैठने को मजबूर किया जायगा, और इस प्रकार बगैर खून खच्चर के हम अपने उद्देश्य में सफल हो जायेंगे।"

"मगर एक बात खटकती है।"

"क्या।"

"यही कि, नाना साहब विवश होकर सब काम करेंगे, यह विवशता मुझे हितकर नहीं मालूम होती।"

"कोई पर्वाह नहीं, नाना साहब मेरे साथ विश्वासघात न करेंगे। अखिर वे भी भारतीय हैं। पकी-पकाई रोटी मिलती देख, कोई भूखा ऐसा नहीं होता—जो उसे लेने से इन्कार कर दे।······ और अभी तो एक रात शेष है, अगर उन्हें सीधे रास्ते पर ला सका, तो अब जाकर कोशिश करूँगा।"

"हाँ, अगर ऐसा हुआ—तो क्या-ही बात है!"

अजीमुल्लाखाँ चलने को तैयार होकर बोले—"हमीद आपकी खिदमत के लिए है। जिस चीज की जरूरत हो, अपना नौकर समझकर उससे तलब कीजिए! मैं अब चलता हूँ। सावधान रहियेगा।"

युवक ने कहा—"आप कब आयेंगे ?"

"मैं ?"—अज़ीमुल्लाखाँ ने क्षण-भर ठहरकर कहा—"मैं नाना साहब के पास होकर रात को बारह-एक बजे यहाँ आऊँगा। बाबा भट्ट और बालराव भी मेरे साथ रहेंगे।—एक बार सब मिलकर सलाह पक्की कर लें।·········और आप से उनको मिलाना भी तो है।

युवक ने पूछा—"और रामचन्द्रराव ?—वे जेल में है ? क्यों ?"

"हाँ, वे जेल में हैं !"

युवक ने पूछा—"ऐसे वक्त आप उन्हें छुड़ाते क्यों नहीं ? क्या आप इतनी शक्ति भी नहीं रखते ?"

"यह सब कुछ है। कैद होने के दूसरे दिन ही हमने उन्हें छुड़ाने का आयोजन कर लिया था। मगर उन्होंने छूटने से इनकार कर दिया। कहने लगे—"नाना साहब मेरे स्वामी हैं, उन्हीं की आज्ञा पर मैं कैद हुआ हूँ, उन्हीं की आज्ञा पर छूटूँगा।" हम लोगों ने उन्हें बहुतेरा समझाया, मगर वे किसी प्रकार राजी न हुए।"

युवक के मुँह से "धन्य ! धन्य !!" निकल गया।

४

●●●

रात के आठ बजे······

नाना साहब के बाग में······

दो चपल युवतियाँ घूम रही हैं।

एक मैना है[1], दूसरी उसकी सखी मालती। दोनों बाग में—न-जाने क्यों—घूम रही हैं।

अचानक एक चिड़िया पेड़ पर चहक उठी। मैना ने ठण्डी साँस लेकर कहा—"हम से ज्यादा तो यह चिड़िया-ही भाग्यवान है!"

मालती ने साश्चर्य पूछा—"सो कैसे ?"

मैना बोली—"नहीं समझी ?"

"नहीं।"

"देख, यह स्वच्छन्द है, हम परतन्त्र, यह अपनी मालिक खुद हैं, हमारे मालिक फिरङ्गी हैं; यह जहाँ चाहे जा सकती है, हम अपनी इच्छा से घर से बाहर नहीं निकल सकते; यह चाहे जो बोलती है, चाहे जो करती है, हमें बोलने—तक की स्वतन्त्रता नहीं है। बता, यह हमसे ज्यादा भाग्यवान् है या नहीं ?"

मालती ने सखी से सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—"सखी, परिस्थिति सब-कुछ करा लेती है। समय की गति विचित्र है! भाग्य का उल्ट-फेर आश्चर्य-जनक है! एक दिन था—फिरंगी चूड़ीदार पायजामा और अँगरखा-पगड़ी पहन कर हमारे पैरों में लोटने को भटकते थे, आज हमें उनके सामने झुकना पड़ रहा है, एक दिन था—जब फिरंगी हमारे क़दम चूम-चूमकर गज-भर जगह की भीख माँगते थे, आज वे हमारी रोटियाँ खाकर, हमारी खूराक छीनकर, हम पर शासन करते हैं, हमें नीच समझते हैं, हमें मारते हैं, पीटते हैं, दबाते हैं, और कोई उनका बाल बाँका नहीं कर सकता।"

मैना बोली—"ओह! सौ वर्ष के भीतर-भीतर ज़हर

---

१. मैना नाना साहब की पुत्री थी, और इसी अपराध में अंग्रजों ने इसे जीता आग में जला दिया था।

की तरह देश की नस-नस में फैल गये, देश के कोने-कोने में पंजे फैला बैठे, जोंक की तरह देश को चूस लिया, और देशवासियों के हृदय पर गुलामी का काला पर्दा डाल दिया। उफ़! उफ़!!"

मालती ने सखी की बढ़ती हुई गम्भीरता, और वेदना देखकर अधिक कहने का साहस न किया। बोली—"समय की बलिहारी है।"

मैना फिर कहने लगी—"कैसी दुर्दशा है! कैसी विडम्बना है! रियासत छिनी, गद्दी छिनी, पेन्शन छिनी, अब रहे सहे को भी ये पापी फिरंगी हड़प किये जा रहे हैं। रोज सैंकड़ों खाते हैं, खेलते हैं, मौज उड़ाते हैं, और तिस पर भी रोब जमाते हैं! अभी देखो, ये बे-हया मेमें महीनों से हमारा ही खा रही हैं और हम पर ही हुक्म चलाती हैं। एक वह बदकार लिली है, कभी सीधे-मुँह बोलती तक नहीं। दोनों हाथों इस तरह रुपया लुटाती है—मानो बाप के घर में खजाना गड़ा है। रोज़ नये फैशन, रोज़ नये उत्पात, रोज़ नया शौक!···बेशर्म! आधी नंगी, रंडी-सी बनी सब जगह फिरती है, और सब पर रौब गाँठती है। उस दिन बेचारे रामचन्द्रराव को बिना अपराध कारागार में डलवा दिया।···और पिता जी······उन्हें पता नहीं इन सफ़ेद राक्षसों पर क्या श्रद्धा है—कि बिना भविष्य पर दृष्टि-पात किये दिन-दिन खोखले होते जा रहे हैं! पेन्शन नहीं मिलेगी—नहीं मिलेगी!—अजीमुल्लाखाँ ने इन नराधमों की तोता-चश्मी का खूब बखान किया—तो भी वह श्रद्धा कम न हुई। उफ़! ईश्वर भारत की रक्षा कर! हमारी रक्षा कर!!"

मालती कुछ कहना ज़रूरी समझकर बोली—"हाँ, अजीमुल्लाखाँ तो महाराज को बहुतेरा समझाते हैं, पर...।"

मैना कहने लगी—"अज़ीमुल्लाखाँ नर-रत्न हैं, वीर हैं; दूर-दर्शी हैं, और सच्चे भारतीय की तरह अँग्रेजों से घृणा करते हैं……"

मालती बोली—"हाँ घृणा करते है, खूब घृणा करते हैं !"

मैना कहती रही—"अज़ीमुल्लाखाँ कट्टर देश-भक्त हैं। उनकी नस-नस में देश-भक्ति का उन्माद है, उनके खून में देश को स्वतन्त्र करने का जोश है। वे देश को स्वतन्त्र करने में भयंकर रूप से व्यस्त हैं। परमात्मा उन्हें चिरायु करें और उनके सत्संकल्प में सफलता प्रदान करें। देश में आग लग चुकी है। चिनगारियां उडने लगी हैं, यहाँ भी शीघ्र ही पहुँचेगी, और सब जगह भी शीघ्र ही पहुँचेगी। देश-व्यापी क्राँति होगी। अधिक देर नहीं है। मुझे सब मालूम है। अज़ीमुल्ला ! वीर अज़ीमुल्ला ! प्यारे अज़ीमुल्ला ! तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी। भारत के उद्धार का सेहरा निश्चय तुम्हारे मस्तक पर बँधेगा !"

दोनों सखियाँ बहुत देर तक गुम-गुम बैठी रहीं। आखिर मालती ने कहा—"अभी तक नहीं आये !"

मैना चुप रही।

मालती सखी का उद्वेग देखकर बड़ी चिन्तित हुई। तब कुछ देर बाद उसने और बात छेड़ी—"सखी, मैंने आज एक नई कविता बनाई है। सुनोगी ?"

इस काम के लिए मैना सदा तैयार रहती थी। सुलभता से चौंककर—मुस्करा कर बोली—"सुनाओ।"

मालती ने कविता सुनाई—

सखी ! तू ऐसी पागल क्यों हो गई है ?

तेरे पिया बहुत दिनों से परदेस गये हैं, और उनकी चिट्ठी नहीं आई।

परन्तु चिट्ठी के बिना तेरी छाती में दर्द क्यों होता है—यह समझ नहीं पड़ता।

तुझे सारी रात नींद नहीं आई है।

और तूने करवट ले-ले कर रात बिताई है।

तेरे नेत्र आँसुओं से भरे हैं, और देह मृदुल लता की तरह मुर्झा गई है।

हे सखी! तू अपने केश न नोंच, और आँखों से पानी न गिरा। बुरा समय गया।

—अरी बावली! पीछे फिरकर देख—पति देवता पास ही खड़े हैं!!

मालती कविता समाप्त कर, एक-दम खिलखिला पड़ी, और आश्चर्य जनक तेजी-से उठकर कहीं भाग गई!

मैना चकित, स्तम्भित बैठी रह गई। यह क्या ?···इतने में पीछे कोई धीरे-से हँसा।···

मैना ने चिहुँक-कर पीछे देखा—अज़ीमुल्लाखाँ खड़े हैं।

मैना खड़ी हो गई, पर अज़ीमुल्लाखाँ ने "बैठो, "बैठो" कह कर उसे बैठा दिया, खुद भी—जरा परे—बैठते हुए हँसकर कहा—"तुम्हारी सखी तो बड़ी सुन्दर कविता करती है, और बिल्कुल मौजूँ। मुझे तो मालूम होता है, मुझे देखकर ही इसने इस कविता की रचना की है।"

मैना ने सहास्य पूछा—"आप कब-से यहाँ खड़े हैं?"

"तभी से जब तुम्हारी सखी ने कहा था—अभी तक नहीं आये।"

मैना ने इस वार्तालाप में अधिक दिलचस्पी न ली, और रुख बदलकर कहा—"कहाँ से आते हो?"

अज़ीमुल्लाखाँ उदास होकर बोले—"महाराज के पास से।"

"क्या हुआ?"

"कुछ नहीं हुआ; खूब हिला-डुला कर देखा, परन्तु निराशा ही हाथ लगी। अँग्रेजों पर से उनकी श्रद्धा किसी प्रकार कम नहीं होती।"

"फिर क्या उपाय करोगे ?"

"बस वही; महाराज को विवश करना होगा।"

"हूँ।" कहकर मैना थोड़ी देर के लिए सोच में डूब गई।

चन्द्रमा ऊँचा उठ गया था। चाँदनी मैना के चेहरे पर पड़ रही थी। अज़ीमुल्लाखाँ एक टक उसका स-प्रभ मुख निहारते रहे। कैसा रूप ! कैसी कोमलता !! और—कैसी कठोरता ! कैसी लगन !! अज़ीमुल्लाखाँ के मुँह से सहसा निकला—"प्यारी मैना !"

मैना ने सुना, और माथे पर बल डालकर अज़ीमुल्लाखाँ को देखा। उसकी आँखों में एक अनिर्वचनीय ज्योति थी। अज़ीमुल्लाखाँ ने अ-प्रतिभ होकर—सहमकर—कैफ़ियत दी—"माफ़ करना, मैना तुम्हारे मुंह से अपने लिये यह शब्द सुन कर ही यह बोलने का साहस किया। माफ़ करना, अब ऐसी भूल न होगी; कान पकड़ता हूँ ! माफ़ करना—"

कहते-कहते अज़ीमुल्लाखाँ ने सचमुच अपने दोनों कान पकड़कर जोर-जोर से खींचे।

मैना के मुख पर क्षण-भर को हँसी की लहर दौड़ गई; और तब गम्भीर होकर, गद्गद् कण्ठ से उसने कहा—"अज़ीम, मैं तुम्हारी भूल पर इस बार ध्यान नहीं देती। परन्तु स्मरण रखो, भविष्य में यह सम्बोधन तब तक तुम व्यवहार में न लाना, जब तक इसके योग्य न हो जाओ।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने झुका हुआ सिर ऊपर उठाकर कहा—"मैं खुद भी ऐसी भूल करना नहीं चाहता। परन्तु जिस पुरानी आग ने तुम्हारे मुँह से यह सम्बोधन निकलवा लिया, क्या वही आग

मेरे दिल में भी नही है। क्या—"

गला भर आने के कारण अज़ीम अधिक न बोल सके।

मैना ने अपने उमड़ते हुए आँसू पीने में जैसी दृढ़ता दिखाई—वैसी स्त्रियों में कम देखी जाती है। थूक सटक कर गला तर किया और बोली—"अज़ीम, मैं सब समझती हूँ। मगर तुम पुरुष हो, मैं स्त्री हूँ—मैं तुम्हारे लिए आदर्श नही हूँ। दृढ़ता में पुरुष सदा स्त्रियों के लिए अनुकरणीय रहे हैं। तुम्हें भी ऐसा ही बनना चाहिए। अगर मैं एक भूल करती हूं—तो मैं प्रार्थना करती हूँ—तुम उसे सुधारो।"

अजीमुल्लाखाँ कहने लगे—"मैना, बिना किसी तर्क-के ही मैं तुम्हारी बात मानने को तैयार हूँ, मगर इतना कहे देता हूँ—कि तुम्हारे लिए अनुकरणीय न मैं कभी था, न बन सकता हूँ। मेरी माँ और तुम—दोनों—मेरी पथ-प्रदर्शिका हो। मेरे हृदय में उठी हुई देश-भक्ति और प्रेम को आग तुम्हारी-ही पैदा की हुई है; तुमने मुझे इस मार्ग पर चलाया है, तुम्हीं मेरी भूल सुधारती हो। ······मैं तुम्हारी भूल कैसे सुधारूँ ?"

प्रेमी—युगल बहुत देर तक सिर नीचा किये निस्तब्ध बैठे रहे। सहसा अजीमुल्लाखाँ ने चौंककर कहा—"अच्छा, अब चलता हूँ ····· !"

मैना ने आँसू—भरे नेत्र उठाकर पूछा—"कहाँ जाओगे ?"

"अब ?" अज़ीमुल्लाखाँ ने कहा—"अब मैं जाऊँगा—हमीद के घर।"

"क्यों ?"

"कल किस तरह काम होगा ? इस विषय में परामर्श करने।"

"कहाँ ?"

"तुम्हारी मन्त्रणा में ?"

"मैं, बालराव, बाबा भट्ट, ताँतिया—और समिति के पश्चिमो-

तर—विभाग के एक अध्यक्ष भी होंगे।"

"वही ?"

"हाँ, वही।"

"वे कब आये ?"

"आज ही सन्ध्या को।"

"कोई नई बात मालूम हुई ?"

"कोई नहीं, मेरठ के गदर और दिल्ली की अवस्था का कुछ विस्तृत-विवरण उन्होंने सुनाया। कहते थे—दिल्ली में मुझे जाना चाहिए। अब अशान्ति शुरू हो गई है। बहुत से सिपाही स्वेच्छाचारिता पर उतर आये हैं। बूढ़े बहादुरशाह कुछ कर नहीं सकते।"

"............?"

"............"

"बहुत बुरा हुआ !"

"हाँ, सचमुच मैं भी बहुत चिन्तित हूँ !"

"तो तुम दिल्ली जाओगे ?"

"हाँ, विचार तो कर रहा हूँ।"

"कब ?"

"बस इधर से निबटा, और चला !"

"कितने दिन में·· ······?"

"बस, अधिक दिन नहीं हैं। कल रात को फिरंगी कैद होंगे, परसों सुबह महाराज गद्दी-नशीन होंगे। अधिक-से-अधिक तीन दिन सेना की व्यवस्था में लगेंगे। ···एक हफ्ते के अन्दर-अन्दर रवाना हो जाऊँगा।"

"अगर पीछे कुछ विपत्ति आई ?"

"कैसी विपत्ति ?"

"अगर अलाहाबाद की गोरी फौज ने धावा किया।"

"यह सम्भव नहीं है। मेरे दिल्ली जाने से पहले अलाहाबाद,

बनारस और दानापुर की फ़ौजें बाग़ी हो जाएँगी। इन स्थानों की गोरी फ़ौजें यहाँ आने का अवकाश न पा सकेंगी।"

"ठीक !......अच्छा, अगर कानपुर के गोरे आत्म-समर्पण न करें ?"

"तो—उनकी सरकोबो के लिए हम काफ़ी मज़बूत हैं।"

"............"

"............"

"अच्छा एक बात पूछती हूँ।"

"क्या ?"

"अगर महाराज गद्दी पर बैठना स्वीकार न करें ?"

"कैसे नहीं करेंगे ? मैं उन्हें विवश करूँगा।"

"मान लो, वे न मानें तो ? —उन्हें मारोगे ?"

"ऐसा नहीं हो सकता। वे जरूर मेरी बात मानेंगे। आखिर वे भी भारतीय हैं।"

"मैं पूछती हूँ—वे तुम्हारी बात अब नहीं मानते—तो इसका क्या प्रमाण—कि तब मानेंगे—? क्या उस समय उनकी भारतीयता में अन्तर आ जाएगा ?"

"देखो, बात यह है, कि—मैंने जितनी बातें अब तक की हैं—सब गोल और इशारों में, महाराज इस बात की कल्पना नहीं कर सकते—कि हमारी तैयारी इतनी विराट् है। यहाँ तक कि उन्हें मेरे किसी अँग्रेज विरोधी षड्यन्त्र में लिप्त रहने का सन्देह भी नहीं है। ऐसी स्थिति में उनके जो भाव हैं—मैं नहीं समझता—इस प्रकार पासा पलटते देखकर भी वे वैसे ही रहेंगे। भूखा आदमी भोजन के अभाव में सन्तोष कर सकता है—परन्तु स्वादिष्ट भोजन सुलभ हो जाने पर उसकी उदासीनता वैसी ही बनी रहेगी—मुझे इसमें पूरा सन्देह है। तुम्हारा क्या विचार है ?"

मैना एक मिनट चुप रहकर बोली—"अच्छा अगर कोई महा-

राज को फिरंगियों से विरक्त कर दे—तब तो किसी प्रकार के अनु-मान पर निर्भर रहना नहीं पड़ेगा ?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने आशान्वित होकर कहा—"वाह ! तब क्या कहना है, फिर तो सफलता अवश्यम्भावी है। परन्तु मुझे ऐसी आशा नहीं दीखती।"

"अच्छा मान लो, ऐसा हो जाए······ ?"

"हाँ, तब ठीक है।···मगर ऐसा करेगा कौन ?"

"यह क्यों पूछते हो ? चाहे कोई करे !"

"तु········।"

"यों ही सही। मान लो, मैं ही···। मेरी शक्ति में तुम्हें विश्वास है ?"

"—संसार में सबसे अधिक···। तुम देवी हो, तुम्हारी शक्ति धन्य है।"

"अच्छा, अब जाओ।"

"जाता हूँ, परन्तु······।"

"क्या ?"

"एक बार फिर बता दो, कब तुम्हें पाऊँगा ?"

"बार-बार क्यों पूछा करते हो ?"

"देवि, मैं तुम्हारी उस गूँज को सदा स्थायी रखना चाहता हूँ। जब गूँज धीमी पड़ने लगती है, तभी पुनः सुनकर उसे तेज़ कर लेता हूँ।"

"अच्छा सुनो, जिस दिन तुम भारत-वसुन्धरा को विदेशियों के शासन से मुक्त करोगे, और विजय का सेहरा बाँध कर मेरे पास आओगे, उसी दिन मुझे पाओगे !"

"तथास्त !"

रात के आठ बजे हमीद के घर पर···

षड्यन्त्रकारी उपस्थित हैं—केवल अज़ीमुल्लाखाँ नहीं हैं।

सबके चेहरे निराशा-से उदास हैं

यह बैठक वह नहीं है, जिसमें आने के लिए—पिछले वार्तालाप में···अज़ीमुल्लाखाँ ने मैना से कहा था, वह उससे अगले दिन की बैठक है···।

···हाँ, चौंकिये नहीं !—आज इस वक्त इन लोगों को अँग्रेज अफसरों की गिरफ्तारी की फिक्र में और कानपुर में नाना साहब को गद्दी-नशीन करने की तैयारी में व्यस्त रहना चाहिए था ? यह क्या ??

ठहरिये, हम संक्षेप में बताये देते हैं—चतुर अँग्रेजों के सामने इन लोगों को मुँह की खानी पड़ी ! कौशल फेल हुआ !! कौड़ी पट गिरी !!!

ताँतिया ने कहा—"अफ़सोस ! अफ़सोस !! सब किया-कराया व्यर्थ हुआ।"

बालराव "इतना परिश्रम बेकार हुआ !"

बाबा भट्ट—"हुआ, सो हुआ, मगर आगे क्या होगा !—जरा इसकी तो कल्पना करो !"

"दानापुर, अलाहबाद और बनारस की फौजें कानपुर का इन्तज़ार कर रही होगी। यहाँ कुछ नहीं हुआ तो—वहाँ भी कुछ न होगा। फिरङ्गियों को मौका मिल जाएगा। दिल्ली घिर जाएगी। हजारों आदमियों को तोप से उड़ा दिया जाएगा। उफ ! क्या सोचा था, क्या हो गया !!"

ताँतिया बोला—"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है।"

"कैसे ?"

"दस अँग्रेज-अफसर इस समय भोजन के कमरे में हैं। उन्हें क़ैद कर लिया जाए। टीकमसिंह जाएँ और सेना-सहित फिरंगियों के हस्पताल[1] पर धावा बोल दें......"

टीकमसिंह ने कहा—"मैं इस पर विचार कर चुका हूँ परन्तु मुझे इसमें सफलता नहीं दिखाई देती।"

"क्यों ?"

"कई बातें हैं। आज अफसर विशेष सतर्क होंगे, और अफसरों की उपस्थिति में सारी तो दर किनार—आधी-चौथाई सेना को बाग़ी करना भी मेरी सामर्थ्य के बाहर है। अफसोस, अब कुछ नहीं हो सकता !"

थोड़ी देर सब चुप रहे, फिर हमीद ने—जो अब तक चुप था—आप-ही-आप बड़बड़ाना आरम्भ किया—"सालों ने चाल भी क्या चली है। कैसी दूरी-अन्देशी की है। ऐन वक्त पर नाना साहब से कहला भेजा—'हम सब लोग एक साथ भोज में शामिल नहीं हो सकते; फौजों के बाग़ी होने का डर है—दस-दस करके आयेंगे। दस अफ़सर जब भोजन करके वापस कानपुर आजायेंगे, तब दूसरे दस रवाना होंगे।' वाह कैसी हरामजदगी की है ! या खुदा ! तेरा कहर भी इन जालिमों पर नहीं पड़ता !!"

पश्चिमोत्तर-विभाग के युवक-अध्यक्ष अब-तक चुप थे। इस असफलता का सबसे अधिक प्रभाव उन पर पड़ा है—ऐसा उनका चेहरा कहता था। अब उन्होंने ऐसे स्वर में कहना शुरू किया—मानो अभी खूब रोकर चुके हैं—"लाखों आदमी गारत हो गए ! सारी योजना

१. विद्रोह की सम्भावना से डरकर अँग्रेज अधिकारियों ने कच्ची मिट्टी का एक बड़ा घर बना लिया था, जिसमें सब अँग्रेज रहते थे; यही हस्पताल था।

उलट-पुलट हो गई ! जिस बात की कल्पना भी न की थी, वही हो गई ! हा भारत माता ! तुम्हारे भाग्य में अभी परतन्त्रता की बेड़ी पहनना बदा है ! जिस स्थान पर सफलता का पूरा विश्वास था— वहीं सब बात उलट गई ! हा भगवान् ! माँ छोड़ी, बाप छोड़ा, घर त्यागा, दौलत पर लात मारी—और यह पुरस्कार तुमसे मिला !"

यह कहते-कहते वे अधीर होकर रोने लगे।

और सब तो पत्थर की मूर्ति बने बैठे रहे, परन्तु बाबा भट्ट से न रह गया ! उन्होंने युवक का हाथ पकड़ा, और दृढ़ स्वर में कहा— "क्यों रोते हो ? रोना भी कोई वीरता है ? आदमी परिश्रम करता है, सफलता या असफलता, दोनों में से कोई एक मिलती है। अगर सब कामों में सफलता अनिवार्य हो जाए, तो सफलता का मूल्य ही क्या रह गया ? शांति धारण करो, फ़ौलाद की तरह दृढ़ हो जाओ। अज़ीमुल्लाखाँ आते होंगे। उनसे परामर्श करेंगे। मैं नहीं समझता, भारत-माता के हजारों वीरों का महान् त्याग व्यर्थ जाएगा। अगर एक उपाय व्यर्थ हुआ तो क्या अन्य किसी प्रकार की आशा नहीं रही ?"

किसी ने बाहर से कहा—"अवश्य रही।"

ये अज़ीमुल्लाखाँ थे। उन्होंने कमरे में प्रवेश किया। सब लोगों ने सहर्ष उनकी बात सुनी, और खड़े होकर उनका स्वागत किया।

अज़ीमुल्लाखाँ के साथ-ही-साथ सब बैठे। तांतिया ने बैठते ही पूछा—"क्या हुआ ? फिरंगी गये ?"

"हाँ, भोजन समाप्त हो गया, जा रहे हैं।"

बाबा भट्ट ने हाथ मलते हुए कहा—"क्या पिंजरे में आई चिड़िया को छोड़ना पड़ेगा ?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने माथे का पसीना पोंछा, और विषादयुक्त हँसी हँसते हुए कहा—"अब तो छोड़ना ही पड़ेगा।"

"अब तो का क्या मतलब ?"

"यह कि—फिर जोर लगाया जाए !"

तांतिया बोले—"कुछ आशा दिखाई देती है ?"

"मैं तो घोर आशावादी हूँ। जीवन में मुझे बड़ी-बड़ी असफलतायें मिलीं, परन्तु सदा अपने काम में जुटा रहा। अब भी ऐसा ही होगा। आखिरी दम तक मैं अपनी कोशिशों से बाज न आऊँगा।"

बालराव कहने लगे—"लेकिन अब हो क्या सकता है ? दानापुर, अलाहाबाद, बनारस की सेनाएँ कानपुर के विद्रोह-समाचार की प्रतीक्षा कर रही होंगीं। यहाँ कुछ नहीं हुआ, तो वहाँ भी कुछ नहीं होगा। इधर फिरंगी सावधान हो गये हैं।"

हमीद बड़बड़ाने लगा—"ओफ़ ! बदमाशों ने कैसी चाल चली है ? सब एक साथ नहीं आये। दस-दस करके आये। कैसी चालाकी के साथ मौत के पंजे से निकल भागे। ओफ़ ! आज मेरी तलवार का करिश्मा......।"

इसकी बड़बड़ाहट पर किसी ने ध्यान न दिया। अज़ीमुल्लाखाँ—बालराव को लक्ष्य करके कहने लगे—"फिरंगी अभी सावधान नहीं हुए हैं। मैं इन लोगों की प्रकृति जानता हूँ। ये लोग भयङ्कर विपत्ति में भी किंकर्तव्य-विमूढ़ नहीं होते, और बड़ी-से-बड़ी आफत में भी मज़ाक का सामान पैदा कर लेते हैं, और अपने नैमित्तिक कार्यों में बाधा नहीं पड़ने देते। परन्तु अगर ज़रा-सी भी विपत्ति की सम्भावना होती है, तो सब काम अत्यन्त सतर्कता पूर्वक करते हैं, हमारी आज की असफलता का कारण इनकी वही स्वभावसिद्ध सतर्कता है। ......और किसी प्रकार का सन्देह अभी तक उनके मन में पैदा नहीं हुआ है।"

टीकमसिंह ने पूछा—"सेनाओं के हथियार तो न लिये जायेंगे ?"

अज़ीमुल्लाखाँ बोले—"सेनापति ह्वीलर ऐसी बेवक़ूफी कभी नहीं कर सकता। सिपाहियों को मन-ही-मन चाहे वह अपना दुश्मन समझे परन्तु ऊपर से उनके ऊपर अविश्वास की जगह विश्वास

जमाने में ज्यादा फायदा देखेगा। मेरा यह विश्वास कभी गलत नहीं हो सकता।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मुट्ठी-भर गोरों के बल पर वह कभी कानपुर में ठहरने का दुःसाहस नहीं कर सकता। सिपाहियों में विद्रोह की आग न मालूम कब फूट पड़े। रानी विक्टोरिया के जन्म-दिन पर बेचारे ने इस डर से तोप तक तो छुड़वाई नहीं कि कहीं सिपाही चौंक न पड़ें! जानता है हथियार लेने को अगर देसी सेनाएँ परेड के मैदान में भी बुलाई गई तो ग़दर हो जाएगा।"

"तो इसका अर्थ है—कि सिपाहियों को हथियार छिनने का भय न करना चाहिए।"

"हाँ, मेरा ऐसा ही विश्वास है।......मगर एक बात सोचता हूँ। सेनापति ह्वीलर बेवकूफ नहीं है। सन्देह-युक्त सेनाओं के हाथ में अधिक समय तक हथियार रहना, उसे अभीष्ट नहीं होगा। अब उसके लिए एक ही रास्ता रह जाता है।"

"क्या ?"

"......कि कहीं से गोरी फौज उसकी सहायता के लिये मंगाये।"

टीकमसिंह ने चौंककर कहा—"हाँ, यह ठीक है।......अगर ऐसा हुक्म हुआ तो बड़ा अनर्थ होगा।

अज़ीमुल्लाखाँ न धैर्य-पूर्ण स्वर में कहा—"कोई पर्वाह नहीं, अभी कम-से-कम बीस दिन मदद के आने की सम्भावना नहीं है। इतने समय में हमें जो कुछ करना होगा, कर गुजरेंगे!"

बाबा भट्ट ने पूछा—"लेकिन समझाइये तो सही, काम होगा किस तरह ?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने गरजकर कहा—"अब चुपचाप काम नहीं हो सकेगा। अब खून की नदियाँ बहेंगी।"

सब लोग इस गरज से प्रभावित हुए। बालराव ने पूछा—"लेकिन यह सब होगा कब ?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने कहा—"बहुत जल्द;—ज्यादा-से-ज्यादा एक हफ़्ते में।"

ताँतिया बोले—"सच बात जरा साफ़-साफ कहें तो······"

अज़ीमुल्लाखाँ ने कहना शुरू किया—"अभी-अभी—कोई एक घन्टा पहले—मैं नाना साहब के पास बैठा था। फिरंगियों का अन्तिम जत्था नाना साहब के बाग का निरीक्षण कर रहा था। नाना साहब दिन भर की दौड़-धूप से थककर आराम गाह में आ बैठे थे! इतने में मैना दौड़ती हुई आई······।"

'मैना' का नाम सुनकर सब चौंक पड़े, और अधिक ध्यानपूर्वक अज़ीमुल्लाखाँ की बात सुनने लगे।

"···मैना क्रुद्ध और बदहवास आराम-गाह में घुस आई और नाना साहब से लिपट कर रोने लगी। नाना साहब ने आश्वासन देकर पूछा तो रोते-रोते बताया—किसी बदमाश गोरे ने उससे अभद्रता का व्यवहार किया। नाना साहब सुनकर एक बार क्रोध से काँप गए। मुझे बड़ा भारी क्रोध हुआ। मैंने नाना साहब को वह दिन याद दिलाया, जब उन्होंने मिस टामसन की शिकायत पर, बेकसूर रामचन्द्रराव को जेल में ठूँस दिया था। मेरी बात सुनकर और भी उत्तेजित हुए, और बोले—"बता बेटी, किस पापी ने तेरा अपमान किया है! इस शरीर में अभी शिवाज़ी का खून है। चल इसी वक्त उस पापी का सिर उतार लूँ।' परन्तु मैंने यह उचित न समझा। मैंने कहा—"महाराज़, इस शख्स को फिरंगियों के सिपुर्द कर दीजिए। उसे दंड देने का आपको अधिकार नहीं है!" महाराज ने मेरी बात मानी, और गोरे को पकड़ कर सेनापति ह्वीलर के सिपुर्द कर दिया। बूढे ह्वीलर ने वचन दिया, कि वे उसे उचित दराड देंगे।"

बालराव ने पूछा—"आपने ऐसा क्यों किया ? नाना साहब को उत्तेजित क्यों न होने दिया, और फिरंगियों के प्रति उनके मन में—अगर वे गोरे को मार देते, तो—द्वेष-भाव और वैमनस्य पैदा क्यों न होने दिया ?"

अज़ीमुल्लाखाँ बोले—"अगर नाना साहब गोरे को मार डालते तो, निश्चय गिरफ्तार हो जाते। फ़ौजें तैयार न हो पातीं, फ़िरंगी सावधान हो जाते, और सिवा हानि के कुछ लाभ न होता।"

"आपने गोरे को ह्वीलर को सौंप देने में क्या लाभ सोचा ?"

"मैं जानता हूँ—ह्वीलर उस गोरे को कुछ सज़ा नहीं देंगे······।"

"क्यों ?"

"क्योंकि कानपुर में गोरे बहुत-कम तादाद में हैं। ऐसे समय में एक गोरे को दण्डित करके वे बहुत से गोरों के अश्रद्धा भाजन बन जाएँगे। ऐसे मौक़े पर ह्वीलर कभी पारस्परिक फूट का बीज न डालेंगे। समझे ?"

"ठीक···!"

"हाँ: इधर मैं नाना साहब को अधिक भड़का सकूँगा। फिरंगियों के इस पक्षपात के मुकाबले में उनका न्याय रखूँगा। मैं समझता हूँ इस प्रकार नाना साहब अवश्य फ़िरंगियों के खून के प्यासे हो जाएँगे, और खुल्लमखुल्ला विद्रोह में हमारी सहायता करेंगे।··· ··इसीलिए पाँच-सात रोज ठहरना पड़ेगा।"

"लेकिन इसके लिए एक सप्ताह की देर क्यों की जाए ? क्यों न कल-ही ग़दर मचा दिया जाए ?"

"अगर नाना साहब हमारी मदद को तैयार न हुए ?"

"जैसे उन्हे पहले मजबूर किया जा सकता था, वैसे-ही अब भी······।"

"नहीं, अब की बार वैसा नहीं हो सकेगा ?"

"क्यों ?"

"देखो—अगर हम अपने आज के मैदान में सफल होते, और सब अँग्रेज-अफ़सरों को कैद कर लेते, तो नाना साहब को बिना बिघ्न-बाधा के गद्दी मिलती दिखाई देती। अब इतनी विघ्न-बाधाएँ हैं, चिर-परिचित अँग्रेज-मित्र स्वतन्त्र हैं ऐसे सभय में नाना साहब को मजबूर करना असम्भव है। बल्कि शायद वे हमारे काम में बाधक बनें।"

"अगर उन्हें सफलता मिलने-तक अपने रास्ते से हटा दिया जाए ⋯ ?"

"यानी कैद कर दिया जाए ?"

"हाँ।"

"यह सबसे ज्यादा अनुचित और हानिकारक तरीका होगा। सबसे पहले तो—नाना साहब के आठ हजार नौकर हमारे विरोधी बन जावेंगे; दूसरे, नाना साहब से हम जिस बड़ी आर्थिक सहायता की आशा करते हैं, वह नहीं मिलेगी; तीसरे शहर की जनता की सहानुभूति हमारे साथ नही रहेगी; चौथे मैना को⋯⋯नाना साहब के कुटुम्बियों को इससे बड़ा दुःख होगा—अपने स्वामी को क़ैद में डालने को मेरा दिल भी तैयार नहीं होता। नाना साहब को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाने की कल्पना मैं नही कर सकता। क्यों, आप लोगों का क्या ख़याल है ?"

सब लोग बोले—"ठीक है !"

केवल हमीद आप-ही-आप बड़बड़ाया—"ज़ालिमों ने सब किया-कराया चौपट कर दिया ! हाय ! आज-ही-सुबह तलवार पर धार रखवाई थी। छिः ! सब कुछ बेकार हुआ !!"

थोड़ी देर सब चुप रहे ! तब बाबा-भट्ट बोले "तो अब किस प्रकार काम शुरू हो ? सब को काम सौंप दीजिए।"

अज़ीमुल्लाखाँ बोले—"टीकमसिंह फ़ौज में तेज़ी-से आग भड़काएँ। तीन या चार जून तक कम-से-कम दो सेनाएँ उन्हें इतनी तैयार कर लेनी होंगी—कि इशारा होते ही किसी समय भी वे फ़िरंगियों के अस्पताल पर धावा बोलने को तैयार हो जाएँ।"

टीकमसिंह ने सिर झुकाकर कहा—"बहुत अच्छा!"

"......बाबा भट्ट भेष बदलकर साहब लोगों के बावर्चियों में घुस जायँ, और फिर फिरंगियों की प्रत्येक गति-विधि पर नज़र रक्खें......"

बाबा भट्ट बोले—"जैसी आज्ञा।"

"......तांतिया के जिम्मे अस्त्र-संग्रह का काम है। नानासाहब के अधिकांश नौकर निरस्त्र हैं, उनके लिये शस्त्र-संग्रह करना बहुत आवश्यक है।"

तांतिया ने भी स्वीकृति-सूचक गर्दन हिलाई।

तब अजीमुल्लाखाँ ने पश्चिमोत्तर-विभाग के संचालक-महोदय से कहा—"आप चुपचाप रहकर तमाशा देखिये। इधर से निबटकर आप के साथ दिल्ली चलूँगा। ......हमीद तुम चौबीस घण्टे इस घर में रहो। इनकी रक्षा का भार तुम पर है। हर समय तुम्हें नंगी तलवार हाथ में लिए पहरे पर रहना होगा।"

हमीद ने स्वीकार किया, और पहली उदासी भरे स्वर में कहा—"अफ़सोस! आज यह तलवार बदमाश फिरंगियों का खून चाटती होती! ......अब इसे फ़िज़ूल मेरे हाथ में रहना होगा। (दाँत पीसकर)...बदमाशों ने कैसी चाल चली!....दस-दस आये...... ।"

हमीद की इस हास्यास्पद बड़-बड़ाहट पर मुस्कराते हुए सब लोग खड़े हो गये।

६

चार जून की सन्ध्या थी। नाना साहब और मैना बैठे थे। यह वही कमरा था—जिसमें रामचन्द्र राव को दण्ड दिया गया था। अजीमुल्लाखाँ की कुर्सी पर मैना थी, नाना साहब अपनी जगह पर थे।

मैना ने कहा—"बाबा, दीवान साहब अभी लौटे नहीं ?"

नाना साहब बोले—"आते ही होंगे !"

नाना साहब किसी गहन चिन्ता में निमग्न हैं। "बाबा, क्या इस पापी फिरंगी को कुछ दण्ड न मिलेगा ?"

"अवश्य।"

"क्या अवश्य—दण्ड मिलेगा ?"

"अवश्य मिलेगा बेटी, घबरा मत।"

कुछ देर दोनों चुप रहे। फिर मैना बोली—"बाबा, मुझे तो आशा नहीं होती।"

"कैसी ?" नाना साहब ने मानो नींद से चौंककर कहा—"गोरे को दण्ड नहीं मिलेगा ?"

"नहीं, जरूर मिलेगा, अँग्रेज लोग अपने प्रिय का अपराध भी क्षमा करना नहीं जानते।"

"बाबा एक हफ़्ता होने आया, अभी तक कुछ नहीं हुआ।"

"अज़ीमुल्ला रोज़ जाते हैं। सेनापति ने शीघ्र ही दण्ड देने का वायदा किया है।"

"बाबा, अब तक सेनापति ने कुछ क्यों नहीं किया ?"

"बेटी, आजकल सिपाही उत्तेजित हो रहे हैं, सेनापति अपनी और अन्य अँग्रेजों की रक्षा करने का प्रबन्ध करने में व्यस्त हैं।"

मैना ने कुछ ठहरकर कहा—"बाबा, यह कुछ नहीं। सब बहाने-

बाजी है। सेनापति तुम्हें धोखा देता है।"

नाना साहब ने चमककर पूछा—"क्या कहा बेटा ? यह भ्रम तुम्हें कैसे हुआ ?"

मैना उत्तेजित होकर बोली—"बाबा, तुमने इन अंग्रेजो की हद से ज्यादा ख़ातिर करके अपना मान खो दिया। तुम उन्हें अपना मित्र समझते हो, वे तुम्हें, अपना गुलाम–अपना आश्रित, अपना कुत्ता समझते हैं ! बाबा, तुम बड़े अँधेरे में हो।"

कई दिन से नाना साहब के मन में ठीक यही बात उठ रही है। अंग्रेजों की न्याय-प्रियता का महत्व धीरे-धीरे घटत जा रहा है। एक साधारण अँग्रेज लड़की से जरा-सी बात कह देने पर मैंने अपने आदरणीय मित्र को कठोर दण्ड दिया। एक क्षण की देर न की !! और मेरी बेटी—प्यारी बेटी, का अपमान करने वाले एक मामूली गोरे को दण्ड देने में सेनापति ऐसी अनिच्छा और अन्य-मनस्कता प्रकट कर रहे हैं। क्या मै उस नीच गोरे से भी गया बीता हूँ ? क्या सेनापति मेरा इतना भी आदर नहीं करते ? क्या ?

मैना के पिता को चुप देखकर कहा—"बाबा तुम हिन्दुस्तानी हो। अंग्रेज हिन्दुस्तानियों को कभी मित्र नहीं समझ सकते। यह सब समय का प्रभाव है ! एक समय था जब अंग्रेज भारतवासियों के पैरों की खाक चाटते थे, आज हमारी रोटी छीनकर हमें दुरदुराते हैं। बाबा इन पापियों ने तुम्हारी रियासत छीनी, गद्दी छीनी, पेंशन छीनी ! तुम इनकी तोते-चश्मी का हाल अजीमुल्लाखाँ से सुन ही चुके हो—और तब भी तुम इन्हें मित्र बनाने को उत्सुक होते हो ! तुम्हारा माल खाने के लिये ये लोग चाहे मित्र बनें, परन्तु याद रखो, अपने कुत्ते से भी कम ये लोग तुम्हारा आदर करते हैं, और हाथ पर चलती हुई चींटी से भी कम तुम्हारी परवाह करते हैं !"

नाना साहब अस्फुट स्वर में बोले—"अजीमुल्लाखाँ आवें तो पता लगे। अभी कुछ कहा नहीं जा सकता।"

मैना ने दाँत पीसकर कहा—"बाबा, तुम मेरे पिता क्यों हुए ! तुम मेरा अनादर करने वाले को दराड देने की शक्ति नहीं रखते तो लो मेरा गला घोंट दो ! मैं अपने जीते जी अपना यह अपमान नहीं सह सकती। बाबा, तुम्हें शिवबा बाबा की याद···"

नाना साहब घबराकर उठ खड़े हुए, और परेशान होकर कमरे में इधर उधर घूमने लगे।

मैना ने देखा—ज़हर पैदा हो रहा है। कुर्सी पर बैठी हुई थोड़ी देर उनके बदलते हुए भाव देखती रही, फिर धीरे-धीरे बोली···

"बाबा !"

"बाबा !"

"बाबा !"

नाना साहब ने झुका हुआ सिर उठाकर मैना की तरफ देखा। चेहरा सुर्ख हो रहा था। आँखों से आग निकल रही थी, और नीचे की पलकों पर क्रोध का पानी इकट्ठा हो रहा था। उन्होंने क्षण-भर बेटी का मुँह ताककर कहा—"मैना तू जा !"

इससे अधिक कुछ न कह सके। मैना उसी-दम उठकर बाहर चली गई।

नाना साहब टहलते-टहलते बड़बड़ाने लगी—"मेरी बेटी का अपमान करने वाले एक साधारण सैनिक को दराड देने में ऐसी शिथिलता ! मेरे साथ ऐसा कुव्यवहार !··तो क्या सब धोखे की टट्टी है !······क्या यह मेल, मुलाकात, आदर, अभ्यर्थना सब-कृत्रिम है !··क्या सचमुच मुझे ये लोग कुता समझते हैं।······ अच्छा अज़ीमुल्लाखाँ आएँ, तब···"

इतने में अज़ीमुल्लाखाँ कमरे में घुस आए।

नाना साहब ने उनकी तरफ़ देखा, और छूटते ही पूछा—"कहो, क्या खबर है !"

अज़ीमुल्लाखाँ ने उन्हें सलाम किया और सिर झुकाकर खड़े

हो गए।

नाना साहब ने अधीरता से पूछा—"अज़ीम, सेनापति ने क्या कहा ?"

अजमुल्लाखाँ सिर झुकाये हुए-ही बोले—"हज़ूर, आखिर वही हुआ, जो मैं कहता था।"

"क्या ? ?" नाना साहब ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा—"क्या हुआ ?"

"सेनापति ने गोरे को क्षमा कर दिया !"

"क्षमा कर दिया ?"

"जी हाँ, और आज सुबह अलाहबाद भेज दिया।"

"अलाहबाद भेज दिया।"

"जी हाँ, और मैंने उसके कार्य का विरोध किया तो आपकी और आपकी पुत्री की शान में बड़े घृणापूर्वक शब्दों का प्रयोग किया !!···क्या कहूँ महाराज···!"

नाना साहब ने दोनों कुहनियाँ जाँघों पर रखीं, और दोनों हथेलियों पर सिर का बोझ देकर बहुत आहिस्ते से पूछा—
"बोलो क्या कहा ?"

अज़ीमुल्लाखाँ समझ गए—यह क्रोध की तीव्र-तम अवस्था है। बोले—"महाराज, कहने लगा—'चार्ल्स (वह गोरा) निरपराध है, मैंने कहा—'निरपराध कैसे है ? आपके सामने ही तो उसने अपना अपराध स्वीकार किया था ? सेनापति ने कहा—'जो-कुछ उसने वहाँ स्वीकार किया था, वही उसने यहाँ भीं स्वीकार किया, परन्तु नाना साहब की लड़की से उसने जो-कुछ कहा—उसी इच्छा और उसका रुख़ देखकर। प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिए यह बातें क्षन्तव्य हैं। नाना साहब पहले अपनी लड़की का चरित्र सुधारें, तब किसी को दण्ड दिलवाने की सिफ़ारिश करें। मैं तो महाराज, न अधिक सुन सका, न कह सका। एक बार जी में आया पिस्तौल निकालकर

एक-ही फ़ायर में इस बूढ़े को खत्म कर दूँ —लेकिन फिर कुछ सोच कर रह गया ! ओफ़ ! इन लोगों का ऐसा साहस ! इन बद-माशों की ऐसी नीचता !! याद है महाराज; इसी कमरे की घटना है, जरा-सी बात पर रामचन्द्रराव कारागार-दण्ड भोग रहा है ! फिरंगियों के न्याय की क़लई आप पर खुल गई न ? ओफ़ !'

नाना साहब ने क्रोध-से बिलबिलाकर कहा—"अजीम बस करो। मैं ज्यादा नहीं सुन सकता ······।"

नाना साहब यह कहते-कहते कुर्सी छोड़कर खड़े हो गए, और उछल कर खूँटी पर लटकती हुई तलवार उतार ली, और शेर की तरह गरजते हुए बोले—"अगर यह तलवार सेनापति का सिर न काटे, और मैं पापी चार्ल्स के कलेजे का खून न पियूँ, तो शिवाजी की सन्तान नहीं ! चलो, अज़ीम, पहले ह्वीलर का सिर काटूँगा।"

अजीमुल्लाखाँ ने मन-ही-मन हर्षित होकर कहा—"महाराज, आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। सब तैयारी हो चुकी है ! इन अन्याइयों का नाश होगा ! भारत-भूमि को इन राक्षसों के हाथ से स्वतन्त्र करना होगा ! आपकी आज्ञा की देर थी, चौबीस घण्टे में कानपुर से अँग्रेज़ों का नाम-निशान मिट जाएगा। दो मिनट ठहरिये, हम लोग आपके साथ चलते हैं। आप की प्रतिज्ञा पूर्ण होगी।"

नाना साहब ने पागलों की तरह तलवार घुमाते हुए कहा—"मुझे किसी की मदद की जरूरत नहीं है। मैं अकेला ही फिरंगियों का नाश करूँगा। अगर तुम्हें मेरे साथ चलना है तो चलो, वर्ना सामने से हट जाओ।"

नाना साहब यह कहते-कहते उसी प्रकार तलवार घुमाते हुए आगे बढ़े।

नाना साहब की उत्तेजना देखकर अजीमुल्लाखाँ पहले प्रसन्न हुए, फिर उतने ही स-शङ्क भी। क्षण-भर कुछ सोचा, फिर एक तरफ हटकर क्रोधोन्मत्त स्वामी को जाने का रास्ता दे दिया।

नाना साहब तलवार घुमाते और यह कहते कमरे से बाहर निकल गए—फ़िरंगियों का नाश होगा, सेनापति का गला काटूँगा, चार्ल्स का कलेजा फाड़ूंगा।

बाग में मैना खड़ी थी। पिता की यह विकृत चेष्टा देख, वह दौड़कर उनके पास आई, और पुकार कर बोली—"बाबा, कहाँ जाते हो ?"

नाना साहब ने बिना उसकी तरफ देखे तलवार घुमाते हुए कहा—"सेनापति का गला काटने ! चार्ल्स की छाती फाड़ने !" कहते-कहते नाना साहब बाग़ का फाटक पार कर गए।

मैना चकित, स्तम्भित पाँच मिनट तक वहाँ खड़ी रही। एक-दम उत्तेजना। अकेले कहाँ जा रहे हैं ? अज़ीमुल्लाखाँ कहाँ है ?"

इतने में अज़ीमुल्लाखाँ भी दौड़कर आते दिखाई दिए। वे भी उधर ही जा रहे थे, जिधर नाना साहब गए थे।

मैना ने चिल्लाकर पूछा "अजीम, कहाँ जाते हो ?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने उसकी तरफ देखा और चाल में अन्तर डाले बिना कहा—"नाना साहब की रक्षा करने !"—कहते-कहते वे भी बाग़ का फाटक पार कर गए।

मैना ने खूब जोर-से चिल्लाकर कहा—"प्यारे अज़ीम, मुझे भूल न जाना।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने फाटक के बाहर से कहा—"प्यारी मैना, ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

मैना पत्थर की मूर्ति की तरह वहीं खड़ी रही। पाँच-सात मिनट बाद ही उसे महल की तरफ बड़ा कोलाहल सुनाई दिया। चकित होकर वह उस तरफ देखने लगी। पाँच-सात आदमी दौड़ते हुये आए। मैना ने बालराव, बाबा भट्ट, तांतिया, और हमीद को पहचाना। बालराव को लक्ष्य कर उसने चिल्लाकर पूछा—"काका, कहाँ जाते हो ?"

बालराव बोले—"आग लगाने; जान लेने या देने !!" वे सब भी दरवाजा पार कर गये।"

महल की तरफ कोलाहल बढ़ता ही जा रहा था। —मानो हजारों आदमी मिलकर चिल्ला रहे हों। मैना कुछ क्षण तक आश्चर्य-चकित खड़ी रही। इतने में देखा बहुत से आदमी आ रहे हैं। मैना ने पहचाना—सब उसके नौकर हैं, सब के हाथ में तलवार, बन्दूक, कटार, बर्छा आदि हथियार हैं, सब बाग़ के बाहर की ओर भागे जा रहे हैं।

मैना ने चौथी बार चिल्लाकर पूछा—"कहाँ जा रहे हो ?"

हजारों आवाज़ें एक साथ निकलीं—"फिरंगियों का नाश करने ! महाराज की रक्षा करने !! तुम्हारे अपमान का बदला लेने !!!"

जब तक इन लोगों का उत्तेजित जलूस सामने से गुजरता रहा, मैना एक अलौकिक आत्मिक आनन्द अनुभव करती रही !

× × ×

नाना साहब लपके जा रहे थे। अज़ीमुल्लाखाँ ने कानपुर पहुँचते-पहुँचते उन्हें पा लिया। फ़ौजें तैयार थीं। बिगुल की आवाज़ पर ग़दर हो जाता। उधर अँग्रेजों ने अस्पताल में मोर्चेबन्दी कर रखी थी और खूब चौकन्ने थे। ऐसे समय में उन्मत्त नाना साहब को उनके समीप जाने देना बड़ा ख़तरनाक था। अज़ीमुल्लाखाँ ने समझा-बुझाकर उन्हें वहाँ जाने से रोका, सब बातें सुझाईं और बताया, कि अंग्रेजों का नाश दूसरी तरह से भी किया जा सकता है।

नाना साहब ठहर गए, और क्रुद्ध तथा उन्मत्त नेत्र खोलकर अज़ीमुल्लाखाँ को घूरा और नथुने फुलाकर ज़ोर से कहा—"मैं रुक नहीं सकता।"

अज़ीमुल्लाखाँ हाथ बाँधकर बोले—"हजूर, शान्त होइए, अंग्रेज फौरन आपकी हत्या कर डालेंगे। आपका जीवन बड़ा मूल्यवान् है; उसे यों न खोइये। हजारों सिपाही आपके संकेत पर कट मरने को

तैयार हैं...।"

नाना साहब गर्ज कर बोले—"मैं बदला लूँगा।"

अज़ीमुल्लाखाँ बोले—जरूर बदला लीजिये, परन्तु मेरी बात न मानकर आप आवेश में, जान से हाथ धो बैठेंगे। कानपुर की सारी देशी सेना आपके साथ है। दर्जनों तोपें, हजारों बन्दूकें, असंख्य अन्य अस्त्र-शस्त्र हमारे कब्जे में हैं। उनका सदुपयोग कीजिए, और इन राक्षस फिरंगियों से भयंकर बदला लीजिए।"

नाना साहब एक टक अज़ीमुल्लाखाँ का मुँह ताकते रहे, फिर सहसा बोले—"मैं विश्वासघाती ह्वीलर का खून करूँगा।"

अज़ीमुल्लाखाँ बोले—"यह सब हो जाएगा महाराज, जैसे मैं कहूँ वैसे करें।"

नाना साहब उसी तान में बोले—"मैं चार्ल्स की छाती का खून पीऊँगा।"

अजीमुल्लाखाँ ने कहा—"यह भी होगा।"

नाना साहब फिर बोले—"मैं अंग्रेजों का नाश करूँगा।"

अजीमुल्लाखाँ ने कहा—"यह भी होगा।"

नाना साहब ने पूछा—"इसका प्रमाण ?"

अजीमुल्लाखाँ ने उत्तर दिया—"कानपुर चलिये; वहीं मिलेगा !"

इसी समय दूर से भयङ्कर कोलाहल सुन पड़ा। स्वामी-सेवक उधर आकृष्ट हुए। अजीमुल्लाखाँ ने बड़-बड़ाकर कहा—"मालूम होता है, अभी प्रमाण मिलेगा।"

कोलाहल क्षण-क्षण में बढ़ता जाता था। दोनों आदमी चुप-चाप खड़े थे।

हजारों आदमी भाँति-भाँति के शस्त्र हाथों में लिए, कोलाहल मचाते दौड़ते चले आते थे। नाना साहब ने पहचाना—वे सब उनके नौकर थे। आगे-आगे तांतिया, बालराव, बाबा भट्ट और हमीद थे, और उनके पीछे नाना साहब के उत्तेजित नौकरों की लम्बी क़तार !

सब लोग चिल्ला रहे थे—"अंग्रेजों का नाश हो ! अंग्रेजों का नाश हो !!"

बात-की-बात में हजारों आदमी नाना साहब और अजीमुल्लाखाँ के चारों तरफ जमा हुए। अजीमूल्लाखाँ ने मुस्कराकर नाना साहब से कहा—"इसी प्रकार कानपुर की सेनायें महाराज के अपमान का बदला लेने को तैयार हैं !"

नाना साहब का हृदय उत्साह से भर गया, मुँह से बात न निकली। उन्होंने केवल हाथ की लम्बी तलवार उठाकर हवा में हिलाई।

अजीमुल्लाखाँ ने लिल्लाकर कहा—"सब लोग कानपुर चलो। सेना तैयार है। फिरंगियों ये अन्याय किया है। महाराज का अपमान किया है। ऐसे अन्याइयों का नाश हो जाना चाहिए। सब लोग मरने के लिए तैयार हो जाओ।······बोलो नाना साहब की जय !"

सबने भक्ति-भाव से कहा—"नाना साहब की जय !"···"बोलो फिरंगियों का नाश।"

उत्तेजित भीड़ ने भाषण प्रतिहिंसा से पागल बनकर कहा—"फिरंगियों का नाश···!"

कुछ देर बाद समस्त कानपुर, कान के पर्दे फाड़ने-वाले गोलों के धयंकर निनाद से गूँज उठा।

७

●●●

कानपुर में पाँच जून सन् १८५७ का दृश्य जिसने देखा हो—उसके लिए प्रलय और नर्क की कल्पना जरा-भी भय-प्रम, उद्वेग

जनक, अथवा आश्चर्य-कर नहीं होगी। उस दिन कानपुर में हज़ारों मन रक्त बहा, और हवा में उड़कर फुर्र हो गया। उस दिन देशी सेनाओं ने भीषण प्रतिहिंसा से उन्मत हो-होकर खून की होली खेली, और गोरों का सिर काट-काटकर उनके खून से अपना कलेजा और शरीर तर किया। उस दिन सिपाही अपने बीबी-बच्चों और प्राणों को भूल, स्वतन्त्रता की वेदी पर कट मरने को जूझ पड़े। उस दिन सिपाही फिरंगियों का, उनके मकानों का, उनके गिर्जों का और उनके प्रत्येक चिन्ह का नाम-निशान मिटाने को भयंकर रूप से बौखला उठे। चारों तरफ भीषण मार-काट, चीख़-चिल्लाहट और तोप बन्दूकों की गड़-गड़ाहट के सिवा कुछ नहीं था। मिनट-मिनट पर आदमी मरते थे, क्षण-क्षण पर घायल धराशायी होते थे, सेकण्ड-सेकण्ड पर बन्दूकों की बाढ़े छूटती थीं। उस दिन मनुष्य के अनिर्वचनीय मूल्यवान जीवन का मूल्य मुफ्त से भी सस्ता था! सर्वत्र भयंकर कोलाहल-मय अशान्ति का साम्राज्य था!!

उत्तेजित सिपाहियों ने खजाना लूट लिया, कैदियों को मुक्त कर दिया, फिरंगियों को जहाँ पाया मारा—और सब तोपखाने पर अधिकार जमाया।

सारी रात लड़ते, मारते, काटते, और आग में उछलते बीती। सेनापति ह्वीलर और अन्य सब अँग्रेज अस्पताल की चहार-दीवारी में चले गए थे। चौड़ी, कच्ची दीवारों पर रक्खी हुई अंग्रेजों की तोपों ने गोले उगल-उगल कर भयंकर रूप से अव्यवस्थित सिपाहियों का संहार आरम्भ किया था!

सिपाही एक बार इस मार से घबरा गए, और खजाना गाड़ियों पर लाद, दिल्ली चलने को तैयार हुए परन्तु, उसी समय अज़ीमुल्ला खाँ एक सूखे पेड़ पर चढ़ गए और भयंकर रूप से गर्जकर बार-बार कहने लगे—"दिल्ली जाने से सब लोग मारे जाओगे। इधर कानपुर भी हाथ से निकल जायेगा। पहले कानपुर पर कब्जा करो,

फिर पूरी ताकत के साथ दिल्ली की तरफ कूच करेंगे। इसके बिना सब लोग बीच ही में पिस जाएँगे।"

अजीमुल्लाखाँ की वाणी ने बिजली का असर किया। सब जहाँ-के-तहाँ रुक गए—मानो किसी ने मन्त्र पढ़ा दिया हो! सब तरफ निस्तब्धता छा गई।

अजीमुल्लाखाँ चिल्लाकर बोले—"तोपखाने की सब तोपें लेजाकर अस्पताल के सामने मोर्चा-बन्दी करो, और हिम्मत के साथ इन कच्ची दीवारों को तोड़कर फिरंगियों को कैद कर लो!"

इसी समय अंग्रेजों की तोप का एक गोला उस सूखे पेड़ पर आकर गिरा। अजीमुल्लाखाँ बिजली की तेजी से उछल कर पृथ्वी पर आ रहे। लोगों के मुँह से भय की एक चीख निकल गई। अजीमुल्लाखाँ बाल-बाल बच गए।

इस समय नाना साहब कहाँ है?

नाना साहब एक सुरक्षित स्थान पर बैठे हुए सिपाहियों की गति-विधि देख रहे थे। नसों का खून उबला पड़ता था। शरीर जोश-से उछला पड़ता था। अँग्रेजों को इस प्रकार सुरक्षित देखकर बार-बार दाँत पीसते थे। जिस अँग्रेज-जाति का उन्होंने सदा इतना सम्मान किया, जिस अँग्रेज-जाति के लिए उन्होंने अपना धन पानी की तरह बहाया, जिस अँग्रेज-जाति की एक साधारण स्त्री की झूठी बात पर उन्होंने अपने वर्षों के स्नेही रामचन्द्रराव को कठिन दण्ड दिया—उसी अंग्रेज जाति का एक उच्च-पदस्थ कर्मचारी—जिसने वर्षों उनकी रोटियों पर गुजर की, और जिसको लाखों रुपये का माल वे केवल भेंट-स्वरूप दे चुके थे—उनकी बेटी का अपमान करने वाले को इस प्रकार बे-दाग छोड़ दे, और यही नहीं—सब के सामने अपराध स्वीकार कर लेने पर भी उसे निरपराध बतावे और खुद भी उनकी पुत्री को बद-चलन बताने का साहस करे! नाना साहब इस समय इस कृतघ्न अंग्रेज जाति के खून के

प्यासे हो उठे थे, और सेनापति ह्वीलर का सिर काटने को उत्तरोत्तर व्यग्र होते जा रहे थे।

नाना साहब उस घर में अकेले थे। पास में कोई मनोरञ्जन की सामग्री भी न थी। इस कैद-सी में पड़े-पड़े उनका जी ऊबने लगा। सिपाहियों की फुर्ती और मार-काट देखकर बार-बार उनकी इच्छा होती थी, कि स्वयं भी तलवार हाथ में लेकर रण-क्षेत्र में कूद पड़े, और सिपाहियों के साथ मिलकर विश्वास-घाती और नीच अँग्रेजों से बदला लें। परन्तु लाचार थे, घर का दरवाजा मजबूती के साथ बाहर से बन्द था। एक बार उन्होंने खिड़की से कूदने का विचार किया, परन्तु ऊँचाई देखी तो सहम कर रह गए।

किसी ने कमरे में प्रवेश किया। यह अज़ीमुल्लाखाँ थे—खून के तर, भयंकर सूरत, आँखों से प्रतिहिंसा की लपटें निकलती हुई, सिर पर खून सवार—ज़ल्दी-जल्दी कमरे में घुस आए, और आकर नाना साहब को सलाम किया।

नाना साहब ने कुर्सी से खड़े होते हुए उद्विग्न स्वर में पूछा—"क्या हाल है ? फिरंगी कैद नहीं हुए ?"

अजीमुल्ला खाँ बोले—"अभी तक कैद एक भी नहीं हो सका। कुछ मारे गए बाकी सब अस्पताल में चले गए हैं और कच्ची चहार-दीवारी पर मोर्चा-बन्दी करके दृढ़ता-पूर्वक मुकाबला कर रहे हैं।"

नाना साहब ने कहा—"हमारी तरफ क्या हाल है ?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने उत्तर दिया—"हमारी ताक़त काफी से ज्यादा है। आखिर जीतेंगे हमीं। अगर हम गोला-बारी बन्द कर दें, और सिर्फ अस्पताल को घेरकर पड़ जाएँ—तो भी आखिरकार इन लोगों को आत्म-समर्पण करना ही होगा।"

नाना साहब विचार में पड़कर बोले—"...बड़े जोर की गोला-बारी हो रही है !···"

"जी हाँ, 'अज़ीमुल्ला खाँ ने कहा—हम उनका गोला-बारूद

खत्म करना चाहते है ।"

नाना साहब बोले-"कब तक विजय प्राप्त होने की आशा है ।"

अजीमुल्लाखाँ ने व्यक्तता से कहा—"हम लोग बहुत शीघ्र जीतेंगे !...मैं आपकी खबर लेने आया था । शाम को फिर आऊँगा ।'

—कहकर वे बिना उत्तर की बाट देखे, नाना सहाब को सलाम कर, चले गए ।

शाम तक नाना साहब के मन में एक नए विचार ने हल-चल मचाए रखी । अज़ीमुल्लाखाँ आए—तो उन्होंने सबसे पहले कहा—"अज़ीम, मेरी एक बात सुनो ।"

"हुक्म ?" अजीम ने सादर पूछा ।

"सेनापति ह्वीलर और गोरे चार्ल्स ने दण्डीय काम किया है, उनके अपराध पर हजारों अँग्रेजों का खून बहाना अन्याय है । तुम यह गोला-बारी बन्द करा दो, और फिरंगियों से कहो—"वे सेनापति ह्वीलर को हमारे सिपुर्द कर दें ।"

नाना साहब की बात सुनकर अज़ीमुल्लाखाँ एक बार चौंके फिर हँसकर बोले—"हुज़ूर, यह असम्भव है ।"

"क्यों ?"

"अगर मैं फिरंगियों से यह कहूँ कि एक तरफ़ तुम सब लोगों की जान, माल और आज़ादी है; और दूसरी तरफ़ तुम्हारे सेनापति का अकेला शरीर बोलो दोनों में से किसे चाहते हो ?—तो निश्चयपूर्वक वे दूसरी को पसन्द करेंगे ! आप उनसे यह आशा करते हैं, कि वे लोग अपनी जान बचाने के लिए, अपने बूढ़े नायक की गर्दन कटवा देंगे ?"

नाना साहब ने व्यथित होकर सिर झुका लिया, और बोले,—"अज़ीम, बे-क़सूरों का यह खून मेरी गर्दन पर होगा ।"

अज़ीमुल्ला खाँ ने अब की बार क्रोध से गरजकर कहा—"महाराज, जिन लोगों का आपने इतना आदर किया-वे आपका

अपमान करके भी दया के पात्र हैं। जिन्होंने आपका नमक खाकर भी आपकी इज़्ज़त पर हमला किया—वे क्या तलवार के घाट उतार देने के काबिल नहीं हैं ?······और अन्याय ?···आप अन्याय की बात कहते हैं। जिन्होंने अन्याय और अत्याचार के बल पर ही सौ वर्ष से इस देश पर राज्य किया है, जिन्होंने अन्याय और अत्याचार और धोखेबाजी से ही मीर जाफ़र, टीपू सुल्तान और सिराजुद्दौला की दुर्दशा की, उन अन्यायी पापात्माओं के साथ क्या हमारा यह तुच्छ अन्याय क्षन्तव्य नहीं है ? जो धूर्त्त जोंकों की तरह लिपटकर हमारा सारा रक्त चूसे जा रहे हैं—वे अगर सीधे से छुड़ाने से न छूटें तो उन्हें भी काट डालना क्या हमारा धर्म नहीं है ? महाराज भारत-भूमि को इन पापियों के पंजे से मुक्त करना होगा। बिना इनका और अपना रक्त बहाये देश को मुक्ति नहीं मिल सकती, और न ही देश सम्पन्न और खुशहाल रह सकता है···!''

अधिक जोश के कारण अजीमुल्लाखाँ की आवाज गले में अटक गई।

नाना साहब ने अज़ीम का वक्तव्य सुना और दो-तीन मिनट तक निस्तब्ध खड़े रहे। तब सिर झुकाकर भीगे और गम्भीर स्वर में कहा—''अज़ीम, इस समय यहाँ से चले जाओ।''

अज़ीमुल्लाखाँ बोले—''महाराज, मेरी बातें आपके लिए बड़ी उद्वेगजनक होंगी। परन्तु आप इन पर दस बार, बीस बार, हज़ार बार, विचार करें, और मेरे वक्तव्य के हर-एक पहलू पर ग़ौर करें। मुझे यक़ीन है, आप मेरे हम-ख्याल बन जायेंगे।''

नाना साहब ने उसी तरह सिर झुकाये, कातर होकर कहा—''अज़ीम, जाओ, बे-गुनाहों का ख़ून मुझे डुबा देगा। मुझे शान्त बैठकर इस भयंकर पाप से छूटने का उपाय सोचने दो।''

''जाता हूँ महाराज,'' अज़ीमुल्लाखाँ ने कमरे के दरवाजे पर पहुँचकर कहा—''आप सोचें, खूब सोचें, मगर इस रक्त-पात की

बात सोचते हुए पेशवाओं के अतीत गौरव और वैभव को न भूलें—कि इस सारे गौरव और वैभव को अन्याय-पूर्वक छीन लेने वाले यही फिरंगी लोग हैं, जिनपर आप दया करने की आज्ञा दे रहे हैं !"

नाना साहब ने कहा—"अज़ीम ठहरो !"

अज़ीम ने पूछा—"क्या ?"

"सुनो," नाना साहब कुछ गम्भीर होकर बोले—"मैं यह सब समझता हूँ, पर सुनो···अभी समय नहीं है।"

"क्या ?"

अज़ीम ने ठहरकर कहा—"महाराज, इन पापियों के अत्याचार से हम लोग अकुला उठे हैं। देश हमारा है, उसमें हम रहेंगे, इन बदमाश फ़िरंगियों को हम अपना देश, अपनी लक्ष्मी और अपना मनुष्यत्व न सौंपेंगे। सारा देश ग़दर के लिए तैयार है। सारी फ़ौजें बग़ावत पर उतारू हैं। अब इन राक्षस फिरंगियों के पाँव इस देश में जमे रहने असम्भव हैं। आप चिन्ता को त्याग दीजिए।"

अज़ीमुल्लाखाँ यह कहकर चले गए।

८

इसके बाद जो हुआ—इतिहास के पाठकों से छिपा नहीं है। नाना साहब के बार-बार अनुरोध पर सिपाहियों की तरफ़ से गोला-बारी बन्द कर दी गई। उनकी दया-शीलता का प्रभाव अज़ीमुल्ला खाँ पर भी पड़े-बिना न रह सका। उन्होंने तीन हफ़्ते के मुहासिरे के बाद दुर्दशाग्रस्त अंग्रेज़ों के पास सम्वाद भेजा—यदि वे बिना किसी शर्त के आत्म-समर्पण कर दें तो उनकी जाँ--बख़्शी की जा सकती

है, और उन्हें अलाहाबाद भेजा जा सकता है।

अंग्रेज-कौम बड़ी जिद्दी और अहम्मन्य होती है। गर्मी से तड़पे हुए कानपुर के अंग्रेजों ने अब तक किसी प्रकार सामना किया था— और सुबह से शाम तक वे लोग अपनी जान की खैर मनाया करते थे, परन्तु अब विपक्षियों की ओर से जाँ-बख्शी का वादा पाने पर उन्होंने आत्म-समर्पण करने में अपना अपमान समझा, और तिरस्कार पूर्वक अज़ीमुल्लाखाँ का दयादान अस्वीकार कर दिया।

परन्तु हुआ क्या ?

सिपाहियों के तीन गोलों ने इन लोगों का दिमाग़ ठण्डा कर दिया—और स्वयं सम्वाद भेजकर, इन्होंने आत्म-समर्पण करना स्वीकार किया !

उस दिन सत्ताईस जून थी। बाईस दिन की क़ैद, तकलीफ व दुर्दशा को भूलकर अस्पताल के अंग्रेज अलाहाबाद जाने को तैयार हुए। सब लोग अपनी आवश्यक वस्तुएँ साथ लिए मिट्टी की उस चहार-दीवारी से बाहर हुए। सब खुश थे—परन्तु विश्वासघात की आशंका और आत्म-समर्पण की मलिनता सबके चेहरों पर अपनी काली छाया डाल रही थी।

थोड़ी देर बाद विश्वासघात की आशंका निर्मूल दिखाई दी। बाहर निकलते-ही पालकियाँ और हाथी तैयार मिले। कुछ अंग्रेज स्त्री-पुरुष पालकियों में बैठे, कुछ हाथियों पर, कुछ पैदल रवाना हुए। खास नाना साहब के नौकरों का एक विश्वस्त और सशस्त्र जत्था उत्तेजित और रक्त-पिपासु सिपाहियों से इनकी रक्षा के हेतु इनके साथ-साथ चला।

उत्तेजित सिपाहियों और नगर-निवासियों का झुण्ड भी साथ था। वे लोग इन फिरंगियों को इस प्रकार बचकर निकल जाते देख, दाँत पीस रहे थे। इन सिपाहियों के अध्यक्ष टीकमसिंह, दामोदरदास, बालराव और ताँतियाँ टोपी-इत्यादि भी इन लोगों को जीता नहीं

छोड़ना चाहते थे। परन्तु करते क्या ?—अज़ीमुल्लाखाँ की आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस किसी में न था।

एक-एक क़दम रखते—राम-राम करते, आखिर सब लोग सतीचौराघाट पर पहुँच गये। नावें तैयार थीं। अंग्रेज अपना छुटकारा निकट देख, परमात्मा को धन्यवाद देने लगे, और उनके खून के प्यासे सिपाही हाथ मलने लगे।

आखिर अंग्रेज नावों में भी बैठ गये। सेनापति ह्वीलर की आज्ञा से पहले स्त्रियाँ अपने बच्चों को लेकर बैठीं, फिर सिविलियन अंग्रेज और सबके बाद फौजी गोरे नावों में जा पहुँचे। केवल सेनापति किनारे पर रह गये, और धन्यवाद देने के लिए इधर-उधर अज़ीमुल्लाखाँ को खोजने लगे!

उन्होंने शायद दो-तीन बार सिर इधर-उधर घुमाया था, कि अज़ीमुल्लाखाँ एक तरफ से तेज़ चलते हुए वहाँ आ पहुँचे, और सेनापति को धन्यवाद देने के पूर्व ही बोले—"मिस्टर ह्वीलर···!"

अज़ीमल्लाखाँ के मुख पर आन्तरिक उद्वेग-जनित गाम्भीर्य और आँखों में विजय-गर्व की चमक थी!

सेनापति कुछ सशंक होकर बोले—"कहिये···।"

"मिस्टर ह्वीलर, तुम्हें महाराजाधिराज नाना साहब याद फर्माते हैं!"

"महाराजाधिराज नाना साहब!" सेनापति ने अज़ीमुल्लाखाँ की बात को भिन्न प्रकार से दोहराकर उत्तर सोचा, और कहा—"क्यों बुलाया है ?"

"इसका मुझे इल्म नहीं," अज़ीमुल्लाखाँ ने रुखाई से मुंह फेरकर कहा—"अपने साथियों की नावें चलने दीजिये। आपको बाद में एक तेज़ नाव में भेज दिया जायेगा।"

सेनापति ने एक बार भरी हुई नावों को देखा, और दूसरी बार अज़ीमुल्लाखाँ के स्वर और भाव पर लक्ष्य दिया, और तीसरी बार

सारी परिस्थिति पर एक नज़र डालकर वे कुछ विचलित दिखाई दिये !

अजीमुल्लाखाँ फिर बोले—"चलिए।"

सेनापति बुत की तरह चुप !

अजीमुल्लाखाँ ने दोहराया—"चलिये।"

अब की बार सेनापति ने हिम्मत करके कहा—"अगर मैं न चलूँ—तो ?"

"तो—?"—कहकर अज़ीमुल्लाखाँ एक बार चक्कर में पड़ गये, फिर क्षण-भर बाद बोले—"आप खुद समझ लीजिये;—आप हमारे कब्जे में हैं !"

सेनापति का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। बोले—"आपने वादा किया था ?"

"हम अपने वादे पर अब भी क़ायम हैं। इस बात का वादा नहीं किया था—कि आपको दस मिनट के लिये कहीं ले भी नहीं चल सकते हैं !"

सेनापति सिर नीचा करके किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ खड़े रह गये। और पाँच-मिनट बाद सिर उठाकर उन्होंने देखा—बहुत से फ़ौजी गोरे नावों में से उतर-उतर कर उनके गिर्द आ जमा हुए हैं।

अज़ीमुल्लाखाँ ने कहा—"चलिये।"

सेनापति दृढ़ता—पूर्वक बोले—"मुझे क्यों बुलाया जाता है ?—बिना यह मालूम किये न जा सकूँगा।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने एक तरफ उँगली से इशारा किया, और कहा—"वह देखते हैं; क्या है ?"

सेनापति ने देखा—तो थर्रा गये !—तोपों की लम्बी कतार !—नावों के सामने !—एक बाढ़ में नाव और नावों के आदमी भस्म हो सकते हैं !!

सेनापति ने गम्भीरता-से कन्धा हिलाया, और छाती निकालकर

कहा—"मेरे चलने से नावों में बैठे सब लोग सुरक्षित रहेंगे?"

अजीमुल्लाखाँ बोले—"अगर आप इसी वक्त नावों को रवाना कर दें—तो मैं इस बात का ज़िम्मा ले सकता हूँ।"

"यह क्यों?"

"देखिये!"—कहकर अजीमुल्लाखाँ ने उँगली उठाकर साहब को दूसरी तरफ दिखाया।

उधर हजारों देशी सिपाहियों का समूह था।

अज़ीमुल्लाखाँ बोले—"ये सब आप लोगों के खून के प्यासे हैं। मेरे सामने ये लोग लाचार हैं, मेरी गैरहाज़िरी में भी शान्त रह सकेंगे—मैं इसकी जिम्मेवारी नहीं ले सकता।"

सेनापति ने क्षण-भर सोचने के बाद चारों तरफ इकट्ठे गोरों से कहा—"सब लोग जाकर नावों में बैठो, और चलो; मैं पीछे आऊँगा।"

गोरों में एक बार सन्नाटा छा गया—फिर बहुत-सों ने एक स्वर में कहा—"ऐसा नहीं हो सकता। हम सेनापति को अकेला न छोड़ेंगे!"

सेनापति की आँखें भर आईं। गद्गद् कण्ठ से बोले—"मेरी चिन्ता न करो। मैं आज्ञा देता हूँ—सब लोग नावों में बैठकर चले जायें।"

परन्तु नायक-भक्त गोरे सेनापति की इस आज्ञा का पालन न कर सके। कोई टस-से-मस न हुआ।

सेनापति गौरवोन्मत्त होकर बारी-बारी से प्रत्येक गोरे चेहरे को स्नेहपूर्ण-दृष्टि-से ताकने लगे, और उनकी स्वामिभक्ति का पूरा सुख लूटकर किसी विचार में पड़ गये।

एक तरफ उनकी अकेली जान थी—दूसरी तरफ़ सैकड़ों आदमियों की; एक तरफ स्वार्थ था, दूसरी तरफ परमार्थ; एक तरफ अन्याय था; दूसरी तरफ न्याय; एक तरफ भयपूर्ण कायरता थी,

दूसरी तरफ निर्भीक वीरता !

सेनापति ने माथे का पसीना पोंछा और बड़ाबड़ाकर—जिसे और कोई न सुन सका—कहा—

"कायरता न करूँगा !"

"अपनी जान की परवाह न करूँगा !"

"सब लोगों को बचाऊँगा !"

तब उन्होंने धीर, गम्भीर स्वर में गोरों को लक्ष्यकर कहा—"मैं तुम्हारे सेनापति की हैसियत से तुम्हें आज्ञा देता हूँ, कि तुम सब लोग इसी समय नावों में चले जाओ !"

गोरों ने दहलकर सेनापति की इस वज्र-गम्भीर आज्ञा को सुना। और कोई समय होता तो ऐसी आज्ञा पाने पर वे आग में कूद पड़ते। परन्तु अब ?—अब क्या करें ?—सेनापति को दुश्मन के हाथ में अरक्षित छोड़ कैसे जाएँ ? गोरे-लोग साँप-छछून्दर अवस्था में, निस्तब्ध, जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गए। आखिर करें क्या ?—स्वामी को विपत्ति के मुँह में छोड़कर जाएँ ?

सेनापति ने अब की बार अपने स्वर को अधिक प्रचण्ड बनाकर कहा—"तुम लोग अपने नायक की आज्ञा का पालन न कर, अपने कर्त्तव्य और नियम से च्युत हो रहे हो।"

अब की बार एक लम्बे गोरे ने गर्जकर कहा—"श्रीमान् ! हमारे तुच्छ जीवन के लिए आप अपनी जान खतरे में डाल रहे हैं। हम मुद्दत तक आपके आधीन रहे हैं, और आपके साथ रहे हैं। आप की दी हुई रोटी से हमारा पेट पला है। हम इतने कृतघ्न नहीं हैं कि अन्त समय में अपनी जान के डर से आपको छोड़कर चले जाएँ !"

सेनापति ने अपनी हर्ष-जनित उत्फुल्लता को ज़बर्दस्ती छिपाया और गम्भीर होकर बोले—"मैं तुम्हारी स्वामी-भक्ति की सराहना करता हूँ। बस, तुम्हारा कर्तव्य पूरा हो चुका। मेरे विषय में चिन्ता

न करो। मेरा अनुरोध और आदेश मानकर इसी समय नावों में चले जाओ। मैं शीघ्र ही आकर आप लोगों से मिलूँगा।"

दृढ़ गोरे सिपाही सेनापति को छोड़कर जाने को तब भी तैयार न हुए। आखिर हारकर, सेनापति ने उनको इस बात पर राजी किया, कि वे उनके लौटने-तक उनकी प्रतीक्षा करें।

तब सेनापति ने चलते-चलते कहा—"बच्चों, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें!" और अजीमुल्लाखाँ से बोले—"चलिए!"

इतनी देर में अजीमुल्लाखाँ ने नाना साहब के नौकरों—अँग्रेजों के रक्षकों—के अफसर को बुलाकर कुछ बातें समझाईं, और अन्त में जरा जोर से बोले—'याद रखना, इन लोगों की रक्षा—नाना साहब के मान और वचन की रक्षा होगी।"

अफसर 'जो हुक्म' कहकर सिर झुकाता हुआ पीछे हट गया।

तब अज़ीमुल्लाखाँ सेनापति के साथ लम्बे-लम्बे डग धरते, एक तरफ़ चल दिए!

गोरे और देशी सिपाही और नाना साहब के नौकर—सब अज़ीमुल्लाखाँ और सेनापति की दूर-दूर होती हुई पीठ पर नजर जमाकर निस्तब्ध खड़े रह गए।

× × ×

नाना साहब ने तेज़ होकर पूछा—"ह्वीलर! उत्तर दो!"

बूढ़े ह्वीलर ने सिर के बाल, फिर माथा, फिर भौंहें, फिर आँखें, नाना साहब की आँखों के सामने लाकर कहा—"मिस्टर धूंधूपन्त प्राण-भय से झूठ न बोलूँगा। अज़ीमुल्लाखाँ ने मेरे विषय में जो कहा—उसमें से जान-बूझकर अपमान करने और पक्षपात से काम लेने की बातें निकल दी जाएँ—तो उनका कथन सत्य है। मैंने इस मामले को दबाने, और तुम्हें अपमान से बचाने के उद्देश्य से-ही चार्ल्स को इलाहाबाद भेज दिया था। विश्वास करो मैंने जो कुछ किया—अपने आपको तुम्हारा एक दोस्त और हिताकांक्षी समझकर किया।"

नाना साहब ने क्षुब्ध, क्रुद्ध, अवाक होकर कहा—"यानी ?"

"यानी—"बूढ़े सेनापति ने कुछ तेजी-से कहा—"कुसूर तुम्हारी लड़की का है। उसने चार्ल्स को आकृष्ट किया। उस स्थिति में उस नौजवान ने तुम्हारी लड़की के साथ जो व्यवहार किया—उसे मैंने एक हद-तक क्षन्तव्य समझा और जब मुझे मालूम हुआ—बुद्धिमान् चार्ल्स ने बिठूर में तुम्हें अपमान से बचाने के लिए अपना अपराध बिना कैफियत के स्वीकार कर लिया—तो मैंने उसे क्षमा करने में तुम्हारी राय लेनी भी मुनासिब नहीं समझी।"

नाना साहब क्रोध-से काँप उठे। ऐसी फूल-सी, प्यारी, भोली और नादान बालिका···मेरी बेटी···बदचलन···।

इससे आगे नाना साहब कुछ भी न सोच सके। आप-ही-आप उनका हाथ तलवार की मूठ पर चला गया, और आँखें सेनापति की तरफ उठ गईं।

सेनापति! ह्वीलर!!—जिससे प्रेम और मित्रता की बातें होती थीं, अनेकों बार ज़िसके साथ टेबिल पर भोजन किया, हजारों बार जिसके लिए 'मित्र'-शब्द का व्यवहार उन्होंने किया, उसी का वध···

परन्तु पुत्री का अपमान ? कठिन प्रतिज्ञा ? ?

नाना साहब ने तलवार म्यान से बाहर निकाली और उसे पास खड़े हुए अज़ीमुल्लाखाँ के पैरों के पास फेंककर कहा—

"इस विश्वघाती फिरंगी का सिर बाहर जाकर इस तलवार से काट दो!"

अज़ीमुल्लाखाँ ने चुपचाप आगे बढ़कर तलवार उठाली। सेनापति ह्वीलर बहादुरों की तरह तनकर खड़े हो गए, और बोले—"धन्यवाद।"

नाना साहब रोते-रोते बोले—"पुत्री का अपमान!···कठिन प्रतिज्ञा!!···प्यारे मित्र, क्षमा···!"

ह्वीलर ने नाना साहब को कुर्सी पर बैठा दिया, और कहा—

"दोस्त, कोई पर्वाह नहीं, इस मौत में ज़िन्दगी से ज्यादा मज़ा मिलेगा !"—तब अज़ीमुल्लाखाँ की तरफ फिरकर उन्होंने कहा—"चलो, बाहर चलकर अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करो।"

अज़ीमुल्लाखाँ का चेहरा फीका-सा हो गया। यह उक अभतपूर्व घटना थी।

तब दोनों आदमी चुपचाप बाहर आए। सेनापति किसी आत्मिक उल्लास का मजा लूट रहे थे, अज़ीमुल्लाखाँ मन-ही-मन यह सोचकर चकित हो रहे थे,—ओफ्! कोई अँग्रेज़ ऐसा हृदय भी रखता है !!!

सहसा नदी की तरफ से तोपों की भयंकर गड़गड़ाहट सुनाई दी! दोनों ही चौंक पड़े। अज़ीमुल्लाखाँ ने कहा—"अरे—!" सेनापति ने कहा—"हाय !"—और वे बे-तहाश नदी की तरफ दौड़े।

अज़ीमुल्लाखाँ क्षण-भर उसी जगह खडे रहे, तब वे भी सेना के पीछे दौड़ पड़े।

नदी के तट पर भयंकर दृश्य था। सेनापति के आने में देर होती देख, गोरे उस तरफ चलने को प्रस्तुत हुए !

नाना साहब के नौकरों ने रोका; मगर गोरे न रुके, और जबर्दस्ती आगे बढ़े।

उत्तेजित देसी सिपाही तब तक वहीं थे। उन्होंने समझा लड़ाई शुरु हो गई। सब बन्दूकें भर कर उधर दौड़े, और जाते ही गोरों पर हमला कर दिया। तोपचियों ने चट तोपों पर बत्ती रख दी।

हा-हा कार मच गया। नावें उलट गई। स्त्री, बच्चों, वृद्धों और रोगियों की दुर्दशा का ठिकाना न रहा। इधर बहुत से नदी में डूब गए, उधर किनारे के अधिकांश गोरे, सिपाहियों की बन्दूकों और किरचों के शिकार बने।

सेनापति वहाँ पहुँचे—तो यह हाल देखकर एक-बारगी रो पड़े, और पास खड़े हुए अजीमुल्लाखाँ के हाथ से नाना साहब की

दी हुई तलवार छीनकर अपने गले पर फेर ली।

सेनापति गिरे! गिरते-गिरते एक सिपाही की गोली उनके शरीर में घुस गई।

अज़ीमुल्लाखाँ क्षण-भर खड़े वृद्ध सेनापति के मृत शरीर को श्रद्धा-पूर्वक तकते रहे, फिर आकाश की ओर ताक कर आप-ही-आप बोले —"या खुदा! मुझे क्षमा कर! परोक्ष रूप से मेरे द्वारा जो पाप हुआ है, मैं उसका प्रायश्चित करूँगा। सब के हृदय का ज्ञान रखने वाले अल्लाह ताला! तू जानता है, मैं यह सब काम मातृ-भूमि के लिए कर रहा हूँ। मेरा कोई व्यक्ति-गत स्वार्थ इस रक्त-पात में नहीं है, कहकर उन्होंने बगल में लटकता हुआ बिगुल जोर से बजाया।

लडाई उसी दम ठहर गई।



उस दिन १५ जुलाई थी। दोपहर का वक्त था। बिठूर में मैना और मालती बाग में बैठी थीं। मैना चिन्ताग्रस्त थी, और मुर्झा गई थी। मालती उसका जी बहलाने की चेष्टा करती थी परन्तु आज मैना की चिन्ता दूर न होती थी।

अन्त में मालती ने कहा—"मैना, आज चिन्तित क्यों हो?"

मैना बोली—"हूँ।"

"हूँ क्या?"

मैना ने चौककर कहा—"हाँ, क्या कहा?"

"पूछती हूँ आज चिन्तित क्यों हो?"

मैना ने कुछ उत्तर न दिया, और सिर नीचा करा लिया।

मालती बोली—"मैना !"

"हाँ।"

"बोलती क्यों नहीं ?" कहते-कहते मालती ने देखा--मैना की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने आगे बढ़कर सखी की आँखें पोंछीं, और आश्वासन देते हुए पूछा—"मेरी प्यारी ! तुम्हें क्या कष्ट है ?"

अब मैना ने सबको ले-लेकर कहा—"सखी, कुछ कहा नहीं जाता !"

"कुछ तो !"

मैना बोली—"एक तरफ कर्तव्य है, दूसरी तरफ प्रेम, एक तरफ देश की भलाई है--दूसरी तरफ अपनीं, एक तरफ वीरतापूर्ण मृत्यु है, दूसरी तरफ कायरता-पूर्ण जीवन; समझ में नहीं आता किस रास्ते को पकड़ूँ, और मोह के फन्दे से किस प्रकार निकलूँ ?"

मालती ने कुछ चकित होकर पूछा—"सखी, तुम्हारी बात समझ में नहीं आई। अगर कुछ और स्पष्ट करके कहो, तो शायद मैं······"

मैना ने कहा—"तुम्हें मालूम है, इस समय कैसी संकटापन्न अवस्था है? यहाँ हम स्त्रियाँ अकेली—अरक्षित पड़ी हैं, वहाँ कानपुर में सब लोग विपत्ती के मुँह में जाने को तैयार हैं···।"

"हाँ,···कैसे ?"

फिरंगियों का भाग्य उनकी मदद कर रहा है। उनका इकबाल ज़बर्दस्त है। मुझे रात को स्वप्न दिखाई दिया—मानो कानपुर पर उन लोगों का पुनः राज्य हो गया है, और बाबा के साथ सब लोग भाग रहे है, और एक अँग्रेज की गोली खाकर अज़ीम······।"

कहते-कहते मैना पुनः रो पड़ी।

मालती ने तसल्ली देते हुए कहा—"बहन, रो मत, स्वप्न

की बात कभी सच्ची नहीं होती। यह सब दिन के विचारों का परिणाम है।"

मैना ने रोते-कहा—"सखी मेरा मन कह रहा है, हमारी पराजय होगी। विजय की आशा नहीं है।"

मैना के दुःख से मालती बड़ी व्यथित हुई! बोली—"सखी परमात्मा रक्षा करेंगे। स्वतन्त्रता की वेदी पर चढ़ाया हुआ इतना रक्त व्यर्थ न जायेगा।"

मैना आप-ही-आप बोलने लगी—"ज्वालाप्रसाद हार गए। तोपें फिरंगियों ने छीन ली! फतहपुर कब्ज़े से निकल गया!...... बेचारे ग्रामीणों पर अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं। स्त्रियों को बेइज्ज़त किया जा रहा है। हार-पर-हार होती जा रही है! और वह सब किसके कारण?...हमारे कारण, बाबा के कारण! अज़ीम के कारण!"

मालती बोली—"सखी, घबराने की बात क्या है? कानपुर में महाराज का शासन अभी तक सुव्यवस्थित है, और प्रजा प्रसन्न है, सेना दिन-पर-दिन बढ़ रही है। चिन्ता की क्या बात है?"

मैना ने कहा—"फिरंगी दिन-दिन बढ़ रहे हैं। एक-एक कर के गाँवों पर उनका आधिपत्य हो रहा है। ज्वालाप्रसाद की बड़ी सेना पराजित हुई। फतहपुर भी फिरँगियों के हाथ में चला गया। ...अब बालराव गए हैं...।"

मालती बोली—"हाँ, बालराव गए तो हैं! उनके साथ बड़ी शक्तिशाली सेना है। वीर बालराव अवश्य फिरंगियों को छिन्न-भिन्न करेंगे।"

मैना व्याकुल होकर बोली—"अब नहीं,—अब आशा नहीं, हमारी विजय असम्भव है!"

मालती ने कहा—"सखी, ऐसी अशुभ बात मुँह से न निकालो। यह तुम्हारा भ्रम है। हमें विजय की कामना करनी चाहिए।"

मैना ने ठण्डी साँस भरी, और "निराशा ! निराशा !!" कहकर रह गई।

मालती समझाने लगी—"मैना, परमात्मा सहायता करेंगे। घबरा मत। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। उधर बालराव बड़ी सेना लेकर फिरंगियों को रोकने गये हैं। इधर कानपुर की फ़ौजें तैयार हो रही हैं। महाराज फिरंगियों से भयंकर संग्राम करने का विराट आयोजन कर रहे हैं। वीर अज़ीमुल्लाखाँ भी अपनी चेष्टाओं से बाज नहीं हैं। महाबुद्धिमान दीवान साहब अपने प्रयत्न में सफल होंगे।"

मैना ने कहा—"अज़ीम की बात कहती हो मालती ?—अज़ीम डगमगा रहे हैं, उनकी दृढ़ता पिघल रही है, उनका धैर्य शिथिल होता जा रहा है।"

"यह कैसे ?"

"भयंकर विपत्ति के बादल उमड़ रहे हैं। क्षण-क्षण पर हार की खबर आ रही है। नगर की शान्ति रक्षा के लिए कोशिश की आवश्यकता है ! ऐसे नाजुक मौके पर भी अज़ीम मुझे नहीं भूल सके हैं। कानपुर में रक्त की नदी बह रही थी, सैंकड़ों, हजारों प्राणों का संहार हो रहा था, उस समय भी अज़ीम मुझे नहीं भुला सके थे। उन ख़तरनाक दिनों में भी वे रोज मेरे पास यहाँ—आते थे, इन दौड़-धूप के और काम करने के दिनों में भी वे रोज चौबीस घण्टे में एक बार यहाँ आने से न चूकते।—सच कहती हूँ मालती मुझे उनका यहाँ आना-जाना अच्छा नहीं लगता। मुझे उनके इस नित्य के आने से बड़ा खेद होता है और उनके व्यक्तित्व पर मुझे दिन-दिन अश्रद्धा होती जा रही है।"

मालती चकित, स्तम्भित, अवाक् सखी का मुँह ताकती रह गई।

मैना कहने लगी—"सखी, मुझ पर अज़ीम का अनुराग उत्तरो-

त्तर बढ़ता जा रहा है। कहने का साहस नहीं करते—परन्तु मन में उनके यह भावना जरूर है कि अब वे मेरे प्रणय के अधिकारी हो गये हैं। परन्तु मुझे नित्य कलेजे पर पत्थर रखकर उन्हें—ऐसी कोई बात न चलाकर—निराश करना पड़ता है। सखी, जब तब वे यहाँ रहते है, मैं अनमनी होकर बात करती हूँ, जब चले जाते हैं, तो एकान्त में जाकर खूब रोती हूँ। हाय ! क्या करूँ !"

मैना की आँखें फिर भीग गईं।

मालती कुछ सोचकर बोली—"सखी, एक बात पूछूँ।"

"क्या ?"

"तुम्हारा व्रत तो पूरा हो ही गया, अब क्यों खुद जलती हो—क्यों दूसरे को जलाती हो ?"

मैना ने एक मर्म-वेधक, लम्बी सांस ली और कुछ न बोली।

मालती ने फिर कहा—"हाँ सखी, क्यों नहीं पुरानी अभिलाषाओं को पूरा करती हो ? —क्यों व्यर्थ खून के आँसू बहाती हो ? क्यों दो अतृप्त आत्माओं को जान-बूझकर विरह-वेदना में जलाती हो ?"

मैना ने फिर उसी तरह की व्यथा-भरी, लम्बी सांस ली, आप-ही-आप कहा—"अफ़सोस ! इस जन्म में नहीं !"

मालती को यह निराश निश्चय मैना के अन्तस्तल से निकलता मालूम पड़ा। उसने भय-ग्रस्त होकर कहा—"प्यारी मैना आखिर तेरे मन में है क्या ?"

—कहते-कहते मालती उठकर भागी। मैना ने उदास मुँह घुमाकर देखा—गम्भीर भाव बनाए अज़ीमुल्लाखाँ आ रहे हैं।

अज़ीम आकर बैठे। आज मैना ने उनका स्वागत नहीं किया, न उसके चेहरे पर उत्फुल्लता की चमक ही दिखाई दी।

अज़ीम उसका यह भाव देखकर मन-ही-मन लज्जित हुए। जब मैना—उनके बैठने पर भी कुछ न बोली, तो उस लज्जा को दूर करने के अभिप्राय से अज़ीम ने बात चलाई—"बालराव अवंग पहुँच

गये।"

मैना ने मानो नींद में कहा—"हूँ !"

यह क्या ? यह चिन्ता, यह गम्भीरता, यह उदासी क्यों ?

अज़ीम ने काफी देर तक मैना का ध्यान भंग होने की प्रतीक्षा की। जब वह न बोली तो उन्होंने फिर स्वयं ही बात उठाई--"खबर आई है—बालराव व्यूह रचकर दुश्मनों से भयंकर संग्राम करने को तैयार हैं। आज ही रात में, या कल सुबह—अवश्य युद्ध छिड़ जाएगा।"

मैना की गम्भीरता इस पर भी दूर न हुई। अज़ीम बड़े परेशान हुए। क्या करें ?

तब खूब सोचकर उन्होंने एक बात कही--"मैना, मैं कल दिल्ली जाने का विचार कर रहा हूँ।"

यह तीर ठीक निशाने पर लगा। मैना ने तिलमिलाकर कहा—"क्या कहा ?···क्यों जा रहे हो ??"

अज़ीमुल्लाखाँ ने जबर्दस्ती मुस्कराहट रोकी, और गम्भीर बनकर कहा—"खबर है, कि दिल्ली में बहुत अधिक देसी फौजें पहुँच चुकी हैं। अगर मैं वहाँ न गया तो उद्देश्य सफल न होगा। दिल्ली के गिर्द फिरंगियों की फौज घेरा डाले पड़ी है। मेरे वहाँ पहुँचने से सब काम ठीक तौर से पूर्ण हो जायेंगे, अन्यथा एक बहुत बड़ी ताकत फिरंगियों के पंजे में चूहे की तरह फँस जाएगी।"

"इधर क्या होगा ?"

"किधर ? कानपुर में ?"

"हाँ !"

"इधर की कोई चिन्ता नहीं है। इधर हम काफी मजबूत हैं। युक्त-प्रदेश पर एक प्रकार से हमारा कब्जा हो गया है। दिन-दिन सेना बढ़ रही है। लोग नाना साहब के शासन से बहुत सन्तुष्ट हैं। इधर की कुछ परवाह नहीं।"

"—और सेनापति हेव्लॉक—"

"क्या ?"

"···उसका मुकाबला...?"

"हूँ! वह एक साधारण बात है...!"

"ज्वालाप्रसाद तो हार गए...!"

"फिर ?"

"बारह तोपें भी छिनवा आए!"

"वह सब ठीक है। मगर इस पराजय का कारण था। हमने हेव्लॉक की शक्ति का अनुमान लगाने में गलती खाई। हेव्लॉक के साथ रेनडे की मजबूत सेना थी। ज्वालाप्रसाद की हार का यही कारण था।"

"......"

"······अब की बार महा बलवान बालराव फिरंगियों को खदेड़ने भेजे गए हैं। उनके साथ हमारी सेना के छटे हुए वीर हैं! दूर तक मारने वाली भयंकर तोपों की एक बड़ी संख्या भी वे ले गए हैं। इस बार फिरङ्गियों को मुँह की खानी पड़ेगी।···सुनता हूँ, बालराव की मोर्चाबन्दी देख-देखकर दुश्मनों के दिल दहले जा रहे हैं। हमारी जीत निश्चय है ?"

"......"

"···बालराव निश्चय जीतेंगे। उनके लौटते-ही मैं दिल्ली चल दूँगा। दिल्ली पहुंचकर मैं भारत की स्वतन्त्रता का संदेश अन्य देशों को भेजूँगा। रूस, ईटली, जर्मनी—इत्यादि देश सबसे पहले हमें अँग्रेज़ों के पँजे से मुक्त-स्वतन्त्र मानेंगे।···सब बात तय हो चुकी है।"

"......"

"तुम से यही कहने आया था। दिल्ली जा रहा हूँ···"

"......"

"मैना !"

"हूँ !"

"सुनती हो ?"

"हूँ !"

"अब भारत आज़ाद है, अपनी प्रतिज्ञा मैं पूर्ण कर चुका···"

"······"

"अज़ीम कुछ क्षण इक-टक मैना का मुँह ताकते रहे, फिर मानो उन्मत्त होकर, सहसा आगे बढ़कर, उसका हाथ थाम लिया, और काँपते हुए कहा—"तुम्हारे प्रणय का मूल्य मैंने चुका दिया, प्यारी मैना····"

मैना का हाथ मानो अनजान में दहकते कोयले पर पड़ गया ! एक डरावनी और लम्बी, नागिन की-सी फुँकार मार कर वह दूर हट गई, और अपने बड़े-बड़े नेत्रों में कठोरता भरकर उसने कहा—"सावधान ! सावधान !!"

अज़ीम भौंचक-से खड़े रह गए।

मैना तन कर खड़ी हो गई। चेहरा तमतमाने लगा। आँखों की सुर्खी उत्तरोत्तर बढ़ने ज़गी। सुडौल शरीर से मानो शक्ति-तेज फूट-फूट कर निकलने लगा। उसने दृढ़ता-पूर्वक कहना शुरू किया—"अज़ीम ! तुमने अक्षम्य धृष्टता की है ! स्वर्ग के द्वार पर पहुँचकर तुम नर्क में गिर पड़े। अन्त समय में तुम्हारा पतन हो गया है। अफसोस ! अफसोस !!"

धीरे-धीरे अज़ीम की आँखें झुकने लगीं—इतनी झुकीं कि ठुड्डी वक्ष—स्थल से छू गई। आँसुओं की दो बूँद डेढ गज़ का फासला तय कर, पृथ्वी पर जा पड़ीं !

मैना तलमला गई। बड़े कष्ट से उसने अपने आते हुए आँसुओं को रोका, और थूक से गला तर कर उसी कठोर स्वर में कहती रही—"अज़ीम, तुम मेरे स्वामी हो। मैं तुम्हारी हूँ; जीती भी,

मरकर भी; परन्तु सावधान ! मुझे छूने का अधिकार अभी तुम्हें नहीं है ! मुझे छू कर तुमने मेरा प्रण भंग किया, अपने आप को भ्रष्ट किया और अपनी अधीरता के कारण, पुण्य को पाप, अमृत को विष, और सत् को असत् बना दिया !"

अज़ीमुल्लाखाँ उसी प्रकार, निश्चल, निर्वाक्, खड़े रहे।

मैना ने अपने स्वर की तेजी कम न होने दी—"अज़ीम ! तुम्हारे पाप का घोर प्रायश्चित करना होगा। मैं तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी हूँ, तुम्हारा पाप मेरा पाप है। इस पाप का प्रायश्चित दोनों को करना होगा। जाओ, तुम अपने हिस्से का प्रायश्चित करो, मैं अपने का······।"

अज़ीम पर मानों मन्त्र-प्रयोग किया गया है, वे हिलने-जुलने तक में अशक्त हैं !!

मैना ने उसी तरह गरजकर कहा—"अज़ीम, जाओ। फिरंगियों के हाथ से देश की रक्षा करने की प्राण-प्रण से चेष्टा करो। मुझे भूलकर—मेरा मोह त्याग कर—कार्य-क्षेत्र में जुट पड़ो। यही तुम्हारा प्रायश्चित है, और इसी से मुझे सन्तोष की प्राप्ति होगी।"

अज़ीम एक बार जोर से हिले—या काँपे या जाने की चेष्टा की; पर जा न सके।

तब मैना ने बाग़ के दरवाजे की तरफ संकेत करते हुए कहा—"अज़ीम, यह रास्ता है। इसी समय चले जाओ।"

अज़ीम ने इस बार आँखें ऊपर उठाकर मैना को ताका, और तब मुँह फेर कर—यन्त्र-चालित पुतले की तरह, बाग के फाटक से निकल गए।

मैना बहुत देर तक शून्य की ओर ताकती रही, और अज़ीम की आँखों में उसने जो देखा था—उसकी मीमांसा करती रही।

मालती अपनी छुपी हुई जगह से निकल कर आई, तो देखा सखी की आँखों में आँसू नहीं हैं; उन्माद है, मुख पर चिंता नहीं है;

विषाद है, शरीर में कम्पन नहीं है, अवसाद है।

मैना के समीप खड़ी मालती इस बात की मीमांसा करने लगी कि सखी ने उसे देखा या नहीं—परन्तु अचानक······

सखी ने उसकी तरफ सिर फेरकर कहा—"प्रायश्चित करूँगी मालती, तुझे एक पत्र लाकर देती हूँ, उसे कानपुर स्वामी के पास पहुँचाना होगा। ठहर, अभी लाती हूँ।"

—कहकर मैना महल की तरफ चल पड़ी।

"तुम ?"

"हाँ, मैं।"

मालती ने भयभीत होकर सखी को पुकारा—"मैना, कहाँ जाती हो ?"

मैना ने मुंह फेरे हुए कहा—"मैं प्रायश्चित करूँगी।"

"तुम ?"

"मैं !"

साधारण-बुद्धि मालती इस औपन्यासिक रहस्य को समझने की व्यर्थ चेष्टा करने लगी।

१०

अज़ीमुल्लाखाँ हारे-से, खोये-से-धीरे-धीरे—कानपुर पहुँचे। मन पर अथाह चिन्ता और असह्य ग्लानि का बोझ था। मानो शरीर का सत्व खिच गया, अथवा किसी ने जादू कर दिया था, छः मील के मार्ग में उन्होंने किसी आने वाले को, किसी पशु-पक्षी को,—यहाँ तक कि—किसी लता-वृक्ष-तक को नहीं देखा। लगाम

हाथ में लिए हुए घोड़े की पीठ पर सवार थे। पशु ने भी मानो स्वामी की व्यथा का अनुमान कर लिया था और स्वयं भी अनमना होकर एक-एक पैर धरता हुआ जा रहा था!

अज़ीमुल्लाखाँ कानपुर में घुसे। एक तरफ़ खुशियाँ मनाई जा रही थीं। बाजार में चहल-पहल और रौनक थी। जगह-जगह सिपाही, देशी वर्दी पहने हुए, ड्यूटी पर तैनात थे। नगर निवासी स्वच्छ कपड़े पहने, ताजे और हँसते हुए चेहरे लिए, इधर-उधर घूम रहे थे। कई जगह दर्जनों आदमी गोल बाँधे बैठे थे, और बड़े उत्साह से भंग घोटी जा रही थी!

अज़ीमुल्लाखाँ को देखकर सैलानी रुक खड़े हुए, सिपाहियों ने फौजी सलाम किए, बाजे वाले खड़े होकर अपना काम अधिक उत्साह से करने लगे, भंगड़ लोग मजेमें आ-आकर 'जय भंग-भवानी!' जय नाना साहब!' जय दीवान साहब!' चिल्लाने लगे।

परन्तु अज़ीमुल्लाखाँ ने उस आमोद-प्रमोद, इस आदर-स्वागत इस हर्ष-विनोद पर कुछ ध्यान न दिया। किसी तरफ की रौनक और सजावट देखने को उन्होंने एक बार अपनी गर्दन-तक न मोड़ी। घोड़ा बढ़ाए सीधे राज-भवन की तरफ चले। कहें—स्वामी का कोई निर्दिष्ट संकेत न पाकर घोड़ा स्वयमेव उधर चला।

राज-भवन के फाटक पर पहुँचकर अज़ीमुल्लाखां ने घोड़े की पीठ खाली की, और भीतर घुसे।

नाना साहब मसनद के सहारे बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। अज़ीमुल्लाखां को देखते-ही सीधे बैठकर बोले—"आओ अजीम, कहाँ थे?—अभी तुम्हें ही खोजता था।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने जवाब देना चाहा, पर इतनी देर चिंतामग्न और चुप रहने के कारण गला ठस गया था, या सूख गया था! सहसा बोल न सके; बल्कि बोलने की कोशिश में उनकी दोनों आँखें भर आईं।

तब उन्होंने जेब से रूमाल निकाल कर मुँह पर फेरा, और पसीना पोंछने के बहाने कौशल-से आँखों का पानी भी रूमाल में ले लिया, थूक सटककर किसी तरह गला तर किया और नाना साहब के पास ही जाकर बैठ गये ?

नाना साहब ने पूछा—"कहाँ गये थे ?"

उन्होंने कहा—"जरा यों ही जंगल की तरफ निकल गया था—कहिये, क्या हुक्म है।"

महाराज बोले—"कुछ नहीं; अकेले बैठे-बैठे जी ऊबने लगा, अकेले बैठने का अभ्यस्त नहीं हूँ, इसी से···"

अज़ीमुल्ला ने पूछा—"बालराव का समाचार मिला ?"

नाना साहब ने चिंता-युक्त मुद्रा से उत्तर दिया—"नहीं, अभी तो कुछ नहीं मिला !"

अज़ीम ने कहा—"बड़े अचरज की बात है····!"

नाना साहब बोले—"अचरज कुछ नहीं, खबर आने का वक्त अब हुआ है !"

"देखिये तो" अज़ीम ने कहा—"कल वे लोग अवंग पहुँच गये थे, ज्यादा से ज्यादा आज सुबह युद्ध छिड़ गया होगा। इस समय तक अवश्य समाचार मिल जाना चाहिये था···!"

नाना साहब के माथे पर पसीने की बूँद झलक आई। चिंता-युक्त होकर बोले—"सम्भव है, मार-काट जारी हो, बालराव युद्ध में व्यस्त हों, समाचार भेजने का अवकाश उन्हें न मिला हो···और यह भी हो सकता है, समाचार लाने वाला-ही किसी विपत्ति में·······"

—अज़ीमुल्लाखाँ को निराशा से गर्दन हिलाते हुए देख, नाना साहब चुप रह गये।

अज़ीम बोले—"महाराज, लक्षण अच्छे नज़र नहीं आते !"

नाना साहब ने चौंककर पूछा—"कैसे लक्षण ? क्या कहते हो ?"

अज़ीम ने दुःख और निराशा से सिर झुकाकर कहा—"महाराज,

यह बात मुँह से नहीं निकलती,......मेरे मन में न जाने क्यों बड़ी निराशा, बड़ा थकन, बड़ी उदासी पैदा हो रही है !"

नाना साहब ने माथे का पसीना पोंछ, आँखें फाड़कर पूछा—"क्या कहते हो अज़ीम ?......"

अज़ीम केवल "निराशा ! निराशा !! " कहकर रह गये।

नाना साहब ने पुनः कहा—"अज़ीम, आखिर तुम्हारा ऐसा भाव क्यों हुआ ?"

अज़ीम ने कहा—"महराज, अपने मुँह से वह बात कहना नहीं चाहता। ईश्वर करे, मेरा विचार असत्य हो।"

नाना साहब ने कतार होकर पूछा—"अज़ीम, क्यों पहेली-सी बुझा रहे हो ! आखिर बताओ तो तुम्हारे मन में क्या भाव पैदा हुआ है ?"

अज़ीम चिन्ता-मग्न, निस्तब्ध खड़े रहे।

नाना साहब ने फिर उसी कतार स्वर में अपना प्रश्न दोहराया।

अज़ीमुल्लाखाँ ने अपनी झिपझिपी आँखों से स्वामी को ताका और भरी आवाज से कहा—"महाराज, न पूछिए, कुछ देर बाद सब मालूम हो जायगा।"

"बताओ ! बताओ !!" नाना साहब आधीर होकर बोले "क्या तुमने कोई समाचार पाया है ?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने कहा—"महाराज इतने अशान्त न होइये मुझे कोई समाचार नहीं मिला है; अपने आप ही मेरे मन में इस भाव का उदय हुआ है।"

"क्या ?"

अज़ीमुल्लाखाँ ने मानो अपनी आत्मा पर बलात्कार कर कह डाला—"महाराज, मेरा मन कहता है, बालराव हार जायेंगे।"

"हार जायेंगे ?" नाना साहब ने उछलकर कहा—"हार जायेंगे ? हार जायेंगे ??......नहीं ऐसा नहीं हो सकता।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने कुछ उत्तर न दिया।

बहुत देर तक दोनों आदमी पत्थर के बुत की तरह चुप बैठे रहे ! तब मानो-घंटों बीत गये हैं, इस तरह चौंक कर अज़ीमुल्लाखाँ बोले—अभी तक कोई खबर नहीं ?''

उत्तर में नाना साहब के कुछ बोलने के पूर्व ही दरबान कमरे में आया, और बोला—''एक सवार घोड़ा दौड़ाता हुआ आया है; और आपके दर्शन करना चाहता है ?''

''कहाँ से आया है ?''

''सेनापति बालराव की सेना से। कहता है—अत्यन्त आवश्यक समाचार है।''

''भेजो''—सुनकर दरबान उसी तेजी से वापस लौट गया।

सवार उपस्थित हुआ। पसीने से लथपथ, चेहरे पर, पैरों पर, और वर्दी पर खाक-ही-खाक, जहाँ-तहाँ खून के सूखे छींटे—आकर उसने बारी-बारी से नाना साहब और अज़ीमुल्लाखाँ को सलाम किया और घबराकर—जैसे अभी रो पड़ेगा, बोला, ''महाराज ! बड़ा बुरा समाचार है !''

''......?''

''सेनापति बालराव पराजित होकर लौटे आ रहे हैं। फिरंगी बढ़ रहे हैं ! मुझे सेनापति ने भेजा है।''

महाराज और मन्त्री, दोनों ही, उछल पड़े, और चकित, भीत, स्तम्भित उनके मुँह से क्षण भर कोई बात न निकल सकी।

तब बड़े कष्ट से नाना साहब ने पूछा—''इतनी सेना !...इतनी तोपें ?.........फिर हार गये ?.........कैसे हुआ यह ?''

महाराज, सेनापति ने दुश्मनों के छक्के छुड़ा दिये थे। सूर्य उगते ही लड़ाई प्रारम्भ हो गई थी। पहर दिन चढ़े तक पूरी आशा थी, फिरंगी पीठ दिखायेंगे। ऐसे कौशल से व्यूह बाँधकर धावा किया था—कि भागने के सिवा कोई चारा न था। हमारी तोपें निर्दयता-

पूर्वक दुश्मनों का संहार कर रही थीं, सिपाही लोग जान हथेली पर रखकर जूझ रहे थे……"

सिपाही के इस कवितापूर्ण वक्तव्य से ऊबकर नाना साहब ने कहा—"असल बात बोलो, इस भूमिका की आवश्यकता नहीं।"

सिपाही ने सम्हलकर कहा—"……अन्त में फिरंगियों ने एक बार ज़ोर से हमला किया। हमारे सिपाही घबराकर पीछे हटे। अफसोस! गोलन्दाजों की सुस्ती ने जीती हुई बाजी हरा दी……। काश! अगर वे जरा फुर्ती से काम लेते!"

नाना साहब ने अधीर होकर कहा—"बोलो! बोलो!!"

सिपाही बोला—"सेनापति ने गोलन्दाजों को आज्ञा दे रखी थी कि फिरंगी आगे बढ़ने का जरा भी उपक्रम करें—तो वे सबसे पहले अवंग का पुल उड़ा दें।……मगर वे बेवकूफ फिरंगियों के हमलों से डरकर सब-कुछ छोड़-छाड़, भाग खड़े हुए!…नालायक! गधे! बुजदिल कहीं के!!…हाय!…हाय!!"

नाना साहब ने ज़ोर से छाती पीट ली, और एक बार भयंकर रूप से चीख़ पड़े—मानो किसी ने हृदय पर जलता अंगारा रख दिया!—फिर सम्हलकर पूछा—"बालराव आ रहे हैं?"

सिपाही ने आँखों में उमड़ते हुए आँसू पोंछकर कहा—"जी हाँ, सेना सहित वे घायल-अवस्था में इधर आ रहे हैं।"

अज़ीमुल्लाखाँ इतनी देर में कुछ न बोले। इस समाचार ने उनके हृदय पर एक विचित्र और अनिवर्चनीय चोट लगाई—मानो आकाश तक पहुँचा हुआ आशाओं का किला चूर-चूर हो गया! ज्यों-ज्यों सिपाही अपनी बात कहता जाता था—उन पर एक प्रकार की मूर्छा पड़ती जा रही थी। जब वे सब समाचार सुन चुके, और मूर्छित होकर गिर जाने की नौबत आई, तो उन्होंने एक बार कोशिश करके अपने आपको सम्हाला, और सहसा उठ खड़े हुए।

महाराजा ने उनकी विकृत चेष्टा पर दृष्टिपात किया, और वे

कुछ कहना ही चाहते थे—कि अज़ीमुल्लाखाँ एक छलांग मारकर कमरे से बाहर हो गये।

महाराज क्षण-भर को चकित हुए। सिपाही ने कुछ न समझकर एक बार जाते हुए अज़ीमुल्लाखाँ को और दूसरी बार महाराज को देखा।

तब महाराज इस तरफ अधिक ध्यान न दे, सिपाही से पूछने लगे—"हाँ तो, बालराव हार गये?"

"जी, हाँ!"

"गोलन्दाज़ों ने मूर्खता की?"

"जी हाँ, बड़ी मूर्खता और बुजदिली......!"

"अवंग पुल नहीं उड़ा सके?"

"जी हाँ, फिरंगियों की बन्दूकों की बाढ़ से डरकर भाग खड़े हुए।"

"बालराव को बहुत चोट तो नहीं लगी?"

"जी नहीं, साधारण!"

"कहाँ लगी है?"

"बाँये पैर की एक अंगुली कट गई है, दाँये हाथ में एक गोली लगी है; और दो-चार साधारण जख्म लगे हैं।"

नाना साहब "हूँ" कहकर क्षण-भर को रुके, फिर बोले—

"तोपें सब छिन गईं?"

"जी हाँ, पन्द्रह तोपें थीं, सब पर फिरंगियों का कब्जा हो गया!"

नाना साहब "हाय!" कहकर फिर मिनट-भर को चुप हुए, फिर बोले—"फिरंगी पीछा तो नहीं कर रहे हैं?"

"जी नहीं, उन्होंने अवंग के पुल से कुछ आगे बढ़कर डेरा डाल दिया है। मालूम होता है रात को धावा करेंगे।"

नाना साहब पुनः "हूँ!" कहकर गम्भीर हो गये, और दोनों

हाथ कमर पर बाँधकर कमरे में इधर-से-उधर घूमने लगे।

दस मिनट तक वे बिना एक शब्द बोले कमरे में चहलकदमी करते रहे, फिर सहसा रुककर बोले—"जाओ, टीकमसिंह को भेजो!"

नाना साहब के मुख पर कठोरता और दृढ़ निश्चय का भाव था! सिपाही एक बार सिर से पैर तक काँप उठा, फिर सिर झुकाकर, और "जो आज्ञा" कहकर कमरे से बाहर हो गया।

सिपाही गया तो नाना साहब आप-ही-आप बोलने लगे—"अब मेरी बारी है। अन्तिम श्वास तक फिरंगियों से लड़ूँगा। जब तक जिऊँगा, फिरंगियों का रक्त बहाऊँगा। अन्धकार में था। फिरंगियों के अत्याचार ने उनकी न्यायशीलता का पर्दाफाश कर दिया! ऐसे पापी! ऐसे अन्यायी! ऐसे अत्याचारी! जिन्होंने सैकड़ों निरपराधियों को तोपों से उड़ा दिया। सैकड़ों अबोध ग्रामीणों को जीता जला दिया। वे भारत पर राज्य करें! कभी नहीं, जीते जी ऐसा न होने दूँगा। अब मुझे ज्ञान हो गया है, बला से ज़रा देर से हुआ! अब यह मेरा व्यक्तिगत प्रश्न नहीं, सारे राष्ट्र और सारे देश-वासियों का प्रश्न है!"

इधर अज़ीमुल्लाखाँ धीरे-धीरे चलकर अपने निजू घर में पहुँचे नौकर-चाकर दौड़े—पर स्वामी का भाव देखकर ठिठक गये!

अज़ीमुल्लाखाँ शयन-कक्ष में जाकर—जूता और वर्दी पहने पलंग पर पड़ गये, और अर्द्ध मूर्छितावस्था में उनकी आँखों से पानी निकल कर तकिया भिगोने लगा।

अज़ीमुल्लाखाँ बहुत देर तक उसी प्रकार निश्चल पड़े रोते रहे। न-मालूम कब तक पड़े रहते—कि एक नौकर ने कक्ष-द्वार पर खड़े होकर आहट की। चौंककर उठ बैठे। आँखें लाल थीं, गाल और मूँछ भीग गई थीं, चेहरे का सारा रक्त मानो सुत गया था। उन्होंने संकेत से नौकर का अभिप्राय पूछा।

नौकर, स्वामी की विकलता से सहमकर धीरे-धीरे बोला—

"हजूर, बिठूर से मालती आई है, और आपके पास आना चाहती है।"

अज़ीमुल्लाखाँ के मुँह से साश्चर्य निकल पड़ा—"मालती ?" फिर सम्हलकर उन्होंने नौकर से कहा—"भेजो।"

मालती आई। उसने दोनों हाथ जोड़कर अजीमुल्ला को प्रणाम किया, और एक मज़बूत कागज का लिफ़ाफा उनके सामने रख दिया।

अज़ीमुल्लाखाँ ने लिफाफा फाड़कर खत निकाला। मैना ने भेजा था। चकित अज़ीम साँस रोककर पढ़ने लगे—

अज़ीम !

तुमने आज मेरी और अपनी प्रतिज्ञा भंग की। तुमने अपनी अधीरता के कारण अब तक के किये कराये पर पानी फेर दिया अफसोस! अफसोस !!

मै तुमको एक बार पति कह चुकी हूँ। सदा से तुम्हें पति मानती आयी हूँ, सदा तुम्हें पति मनाती रहूँगी।

तुमने आज जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित हम दोनों को ही करना होगा।

आज-तक तुमने मेरे आदेशानुसार काम किया है, मेरे सुझाये बिना तुम अपने आपको अन्धा मानते आये हो। लो अब अपना अन्तिम आदेश भी तुम्हें भेजे देती हूँ। तुम प्राणपण से मातृ-भूमि का उद्धार करने में लगे रहना। आखिरी साँस-तक दुश्मनों को आत्म-समर्पण न करना। जब तक जीवित रहो, भारत-भूमि से फिरंगियों का लोप करने में संलग्न रहना। बस, यही तुम्हारे पाप का, तुम्हारी भूल का तुम्हारी अधीरता का प्रायश्चित है।

मेरा प्रायश्चित भी सुनो। जब यह पत्र तुम्हारे हाथ में पहुँचेगा ......तब मैं कदाचित इस संसार में इस रूप में न रहूंगी। बस यही मेरा प्रायश्चित है।

प्यारे ! स्वामी नाथ विदा !

अभागी

—मैना

अज़ीमुल्लाखाँ के हाथ से पत्र छूटकर गिर पड़ा। एक एक अक्षर मानो दहकता हुआ अंगारा था, जिसने सीधे जाकर उनके अन्तःस्तल का स्पर्श किया। एक एक वाक्य मानो जहरीला तीर था, जो देखते-देखते हृदय को बेधकर निकल गया ! अज़ीमुल्लाखाँ तलमलाकर चिल्ला उठे, और एक बार जोर-से उछलकर दर्वाजे की तरफ "मैना ! मैना !" करते दौड़े !

अज़ीमुल्लाखाँ पागल हो गए ! !

मालती ने मैना का पत्र जमीन से उठा लिया, और कमरे से निकलकर—आँसू पोंछती हुई—न-जाने किधर चली गई !

अज़ीमुल्लाखाँ पैदल ही बिठूर की ओर दौड़े। संध्या हो आई थी। रास्ता रेत से भरा हुआ था। गर्द-गुब्बार उड़ाते हुए, अज़ीम, मानो एक साँस में छः मील का रास्ता तय कर गए, और बिठूर पहुँचकर, बाग के फाटक पर रुके।

साँस फूल रही थी ! पसीना टपक रहा था ! नथुने फटे जा रहे थे ! चेहरे का रक्त बाहर निकल आना चाहता था ! शरीर काँप रहा था !

पर अज़ीम को इस बद-हवासी, इस परिश्रम, इस लम्बी दौड़, इस थकान का जरा होश न था। उन्होंने बाग के फाटक पर पहुँच कर बन्द दरवाजे को देखा। उस पर मानो बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—जाती हूँ। आकाश में एक चिड़िया चहकती जा रही थी, और मानो अज़ीम को सुना-सुनाकर कह रही थी—"गई ! गई ! !"—बाग का, मार्ग का, बिठूर का, वातावरण सुस्त, निस्तब्ध,—मानो, मैना-विहीन, शोक मना रहा था !

अज़ीमुल्लाखाँ चाहर-दीवारी टापकर बाग में पहुँचे। यही

वह सड़क है, जिस पर होकर आया करता था—यही वह पेड़ है, जिसके नीचे हम दोनों बैठा करते थे !—यही वह पत्थर है, जिस पर प्रियतमा बैठी मेरी राह ताका करती थी ! यही वह घास है ! —यही वह रेत है ! हाय !—सब कुछ है, सिर्फ वही नहीं !—उसके बिना सब-कुछ कुछ भी नहीं है ! हाय ! हाय !

अजीमुल्लाखाँ उस पूर्व-परिचित पत्थर के निकट घुटने टेक कर बैठ गए, माथा नवाया, और तब बार-बार उसका चुम्बन करने लगे।

आखिर दाँतों और ओठों से खून बहने लगा। तब वे जाकर उस पेड़ से लिपट गए, जिसके पीछे छिपकर मैना और मालती की बातें सुना करते थे।

—फिर वे उस घास पर लौट गए, जिस पर मैना फिरा करती थीं, और दाँतों से और नाखूनों से घास के पत्तें नोंच-नोंचकर खाने लगे, और मिट्टी खुरच खुरचकर मुंह में भरने और शरीर पर उछालने लगे।

इसके बाद सहसा वे चहार-दीवारी की तरफ दौड़े, और एक ही छलाँग में बाग के बाहर हो गए !—और दो बार जोर जोर से "मैना ! मैना !!" पुकार कर कानपुर की सड़क पर बड़ी तेज़ी से दौड़ पड़े !!

कानपुर पहुँचे तो—सूरज छिपने में देर न थी। नाना साहब अब की बार स्वयं फिरंगियों के सामने जाने की तैयारी कर रहे थे। बालराव और उनकी सेना लौट आई थी। सब लोग एक विचित्र घबराहट, एक अनोखी व्यस्तता, एक भयङ्कर भावी की चिन्ता-पूर्ण कल्पना से घिरे थे !

अजीमुल्लाखाँ सीधे राज भवन में पहुँचे। दरबान ने कहा—"महाराज नहीं हैं !"

अजीमुल्लाखाँ ने आँखें निकालकर दरबान को ताका। गरीब

दरबान काँपकर बोला—"महाराज सेनापति जी की शुश्रुषा में व्यस्त है !"

अज़ीमुल्लाखाँ ने तिरस्कार-पूर्ण नेत्रों से दरबान को घूरा, और बिना कुछ बोले भीतर घुसे !

बड़े कमरे में पहुंचकर अज़ीमुल्लाखाँ एक कोने की तरफ चले। उधर एक चित्र लटका था। यह प्रियतमा मैना का·· था !

अज़ीमुल्लाखाँ चित्र के सामने पहुँचे; कई मिनट तक आँखें गाड़-गाड़कर पता-नहीं-क्या देखते रहे, फिर आप-ही-आप बड़बड़ाएँ—"तू चली गई ? मेरी बेवक़ूफ़ प्रियतमे ! मैं क्या करूँ ?—कहाँ रहूँ ?—कैसे रहूँ ?"

"हः ! हः तू बड़ी चतुर है !—नहीं चालाक है ! नहीं बेवक़ूफ़ है !···· हिश्त ! बेवक़ूफ तो मैं हूँ······तू बड़ी धोखेबाज है !······ नहीं, यह भी नहीं जाने दो —कुछ भी है, पर भली नहीं है। ·· पगली !दुष्ट !···च्च ! च्च ! प्यारी !···प्यारी !···प्यारी ?"

"तेरे-बिना मैं कुछ कर सकता हूँ ?···याद है, वे चाँदनी रातें ! —जब बार-बार, झुँझला-झुँझलाकर, तू मुझे षड्यन्त्र और विद्रोह का पाठ पढ़ाती थी !—और मैं····· मैं उसे भूल-भूल जाता था। वाह रे ! जब अपने आप मूर्ख बना था, अब तू मूर्ख बना गई।"

"हूँ !···काम-चोर कहीं की। वक्त पड़ने पर खुद तो भाग खड़ी हुई—और मुझे उपदेश दे गई —देश को स्वतन्त्र करना ! ······फिरंगियों का नाश करना !···यह करना, वह करना !······ मुझे ही क्या जरूरत पड़ी है ? आप तो जान बचाकर भाग गई, मैं भट्टी में कूदूँ ? वाह ! कैसा बेवक़ूफ मुझे समझा है !········ कायर ! !"

तूने मुझ पर बड़ा भारी अन्याय किया है। मैं तेरे इस अन्याय का तिरस्कार करूँगा, प्रतिकार करूँगा !···तू गई ! क्यों ? मैंने तुझे छू लिया !······हाँ, छुआ ! छुआ !। छुआ !!!···मूर्ख ! हजार

भूलें माफ की······यह नहीं कर सकती थी ?···उन भूलों में एक की वृद्धि नहीं कर सकती थी ?···सुनने वालों ! सुनो !·······देखने वालों ! देखो !—इसका न्याय !

हाँ, इस चित्र में भी तो तू-ही है !······इसे छू लूँ।···मेरा बदला पूरा हो जाएगा······!"

अज़ीमुल्लाखाँ ने हाथ आगे बढ़ाकर उस चित्र को छूने की कोशिश की, पर कोशिश करने पर भी हाथ वहाँ तक न ले जा सके–मानो स्वप्न देख रहे हैं—चित्र बहुत पीछे सरक गया है। झल्लाकर बोले– धतेदे की ! "अच्छा भाई, तू-ही जीती !"

इसी समय कुछ लोगों ने कमरे में प्रवेश किया। चार देशी सिपाही ब्राह्मण-वेष-धारी दो फिरंगियों को पकड़े आ रहे थे !

अज़ीमुल्लाखाँ ने चिल्लाकर कहा—"क्या है ?"

एक सिपाही ने हाथ बाँधकर कहा—"हुजूर, ये लोग जनरल हेव्लॉक के जासूस हैं। बीबी-घर के क़ैदियों[1] के साथ षड्यन्त्र कर रहे थे······।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने पूछा—"क्या षड्यन्त्र ?—कैसा षड्यन्त्र ?"

सिपाही बोला– "अगर ये लोग आज न पकड़े जाते—तो रात में जनरल हेव्लॉक की फौजें कानपुर में घुस आतीं। बीबी घर के कैदियों से ये लोग गुप्त मार्गों के विषय में परामर्श कर रहे थे···।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने बारी-बारी से दोनों जासूसों को गुरेरा, और तब सिर हिलाते हुए बोले—"कहो बच्चू ! कैसे फँसे ! कहाँ गई जासूसी ?"

दोनों जासूस साँस रोककर पत्थर बन गए।

अज़ीमुल्लाखाँ ने तलवार म्यान से बाहर निकालकर कहा—

---

१. सती चौरा के हत्याकांड से बचे हुए फिरंगी-स्त्री-पुरुष-बच्चे ही बीबी-घर के क़ैदी थे।

"अच्छा अपने खुदा को याद करो। एक !...दो ! तीन।"

'तीन' कहकर अज़ीमुल्लाखाँ ने दोनों जासूसों का सिर काट दिया !

अज़ीमुल्लाखाँ की भयङ्करता देखकर देशी सिपाही भी थर्रा उठे !

अज़ीमुल्लाखाँ ने दहाड़कर कहा—बीबी-घर के सब कैदियों को इसी वक्त काट डालो।......चलो, आता हूँ।"

सिपाही चले गये, तो अज़ीमुल्लाखाँ उछल-उछलकर नाचने लगे, और मैना के चित्र की ओर देखकर जोर से हँसते हुए बोले "क्या मैना ! ठीक है न ?"

चित्र में बैठी हुई मैना भला क्या जबाब देती ?

अज़ीमुल्लाखाँ, नाचना बन्द कर, मानो मैना के मौन से असन्तुष्ट होकर बोले—"कहती क्यों नहीं ? ठीक हुआ न ?"

अब की बार जैसे मैना का चित्र मुस्करा पड़ा।

अज़ीमुल्लाखाँ खुश होकर बोले—"हाँ ठीक ! ठीक !!....अच्छा, अब चलकर, फिरंगियों का ताजा खून उछलता देखूँ, और कलेजा ठण्डा करूँ !"

बीबी-घर के अभागे कैदियों को कटवाकर पागल, खूनी अज़ीमुल्लाखाँ ने बिना कुछ कहे-सुने कानपुर से प्रस्थान किया !

उपसंहार

पागल अज़ीमुल्लाखाँ के कानपुर छोड़ देने के बाद क्या हुआ ?

नाना साहब ने चुने हुए वीरों की एक सुदृढ़ सेना तैयार की, और फिरंगियों का नाश करने आगे बढ़े।

१६ जुलाई को दिन-भर और रात-भर खून की होली खिली ! नाना साहब ने, और उनके वीर सिपाहियों ने अपने प्राण संगीनों की नोंक पर रखकर फिरंगियों का नाश किया। खूब घमासान मचा। नाना साहब खुद घोड़े पर सवार होकर गोलियों की बौछार में नाचते रहे। एक बार बीस चुने वीरों के साथ, तोपों के गोलों और बन्दूकों की गोलियों पर जरा ध्यान न दे, वे फिरंगियों की सेना में घुस गये। और सबके सागने-सामने चार्ल्स को ज़िन्दा उठाकर वापिस आ गये।

तब उन्होंने उस पापी चार्ल्स की छाती फाड़कर उसका रक्त-पान किया, और वीर मराठे का प्रण इस प्रकार पूरा हुआ।

सत्रह जुलाई की सुबह को नाना साहब की थकी-हारी, भूखी-प्यासी परेशान सेना एक बार पीछे हटी ! पर नाना साहब भी मरने या मारने की क़सम खाकर आए थे। उनका जोशीला वक्तव्य और भयंकर साहस देखकर सिपाही बार-बार आगे बढ़े। पर अफ़सोस ! स्वतन्त्रता के उन्मत्त पुजारियों को हर बार भारी नुकसान के साथ पीछे हटना पड़ा, आजादी के दीवानों का गर्म खून आजादी के सूखे पौधे को सींचने में व्यर्थ होने लगा !!

इस सत्रह जुलाई को हजारों असफल देश-भक्तों का नामनिशान मिट गया, और एक खूनी और अत्याचारी जनरल का नाम अंग्रेज इतिहास में सदा के लिए अमर हो गया। इस अमर अत्याचारी के

अत्याचार का दिग्दर्शन निम्न उद्धरण से करते हैं :—

"जनरल हेव्लॉक ने सर ह्यू ह्वीलर की मृत्यु के लिए भयंकर बदला चुकाना शुरू किया। हिन्दुस्तानियों के गिरोह-के गिरोह फाँसी पर चढ़ गए।...सबसे पहले गोरे और सिक्ख सिपाहियों को नगर लूटने की आज्ञा दी गई। इसके बाद फाँसियों का बाज़ार गर्म हुआ। लिखा है—कि बीबीगढ़ की जमीन के ऊपर खून का एक बड़ा धब्बा था। सन्देह था कि यह खून गोरी मेमों और बच्चों का है। शहर के अनेक ब्राह्मणों को लाकर जिन पर 'सन्देह था' कि उन्होंने विप्लव में भाग लिया है उन्हें उस खून को जबान से चाटने और फिर झाड़ू से धोकर साफ़ करने की आज्ञा दी गई। इसके बाद इन लोगों को फाँसी दे दी गई। उस समय के एक अँग्रेज़ अफसर ने इन अनोखे दण्ड का कारण इस प्रकार बयान किया है:—

"मैं जानता हूँ कि फिरंगियों के खून को छूने और मेहतर की झाड़ू से साफ करने से एक उच्च-जाति का हिन्दू पतित हो जाता है। केवल इतना ही नहीं, चूँकि मैं यह जानता हूँ, इसीलिए मैं उनसे ऐसा कराता हूँ। जब तक हम उन्हें फाँसी देने से पहले उनके समस्त धार्मिक भावों को पैरों तले न कुचलेंगे तब तक हम पूरा बदला नहीं ले सकते, ताकि उन्हें यह सन्तोष न हो सके कि हम हिन्दू-धर्म पर क़ायम रहते हुए मरे।"

फिरंगियों ने दीन ग्रामीणों पर, निर्दोष नागरिकों पर निरपराध सिपाहियों पर कैसे-कैसे पाशविक अत्याचार किये—उन सब का उल्लेख करके एक औपन्यासिक अपनी मध्यस्थता पर कलंक नहीं लगने देगा। बस, इतना ही काफ़ी है—प्रतिहिंसा की आग में जलते हुए फिरंगियों ने भीषण उदारता-पूर्वक हिन्दुस्तानियों का रक्त बहाया, सैकड़ों निरपराध मनुष्यों को फांसी पर लटकाकर और उनकी फटी हुई आँखें, निकली हुई देहें देख-देखकर अच्छी तरह अपना कलेजा ठंडा किया !!

अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर, नाना साहब कहीं ग़ायब हो गए !

अंग्रेजी इतिहासों में नाना साहब के पलायन के सम्बन्ध में कहा गया है—कि नाना साहब अपने कुटुम्बीजनों को साथ लेकर रातों-रात बिठूर से रवाना हुए ! गङ्गा के घाट पर पहुँचकर सब लोग एक नाव में बैठे। उस अँधेरी रात में भी घाट पर अनेक राजभक्त पुरुषों का जमाव हो गया। नाना साहब ने नाव के एक किनारे पर लगा हुआ दीपक जला दिया, और किनारे पर खड़े हुए लोगों को पुकार-कर कहा—"मेरे जाँनिसार भाइयो, मैंने आपके असंख्य मित्रों और सम्बन्धियों का खून बहाया, मेरे ही कारण आपको धन और शान्ति की क्षति उठानी पड़ी, मेरे ही कारण आपकी ललनाओं का अपमान हुआ, और अब मेरे ही कारण आपमें-से बहुत-सों को फाँसी पर लटका दिया जाएगा। मैं इस दृश्य को अपनी आँखों से देखना नहीं चाहता, इसलिए गंगा में डूबकर अपना और अपने कुटुम्ब का खात्मा किये देता हूँ। जब हमारी नाव डूबेगी, तो दीपक बुझ जाएगा। आप लोग हमें क्षमा प्रदान करें।"

राजभक्त ग्रामीणों ने बड़ी कोशिश की, बड़ी अनुनय की, कि नाना साहब इस प्रकार अपना और अपने कुटुम्बियों का प्राण-नाश न करें, अनेक उन्हें सुरक्षित और छिपाए रखने को भी तैयार हुए, अनेक उनकी तरफ से पुनः लड़ने को तैयार हुए। परन्तु नाना साहब ने हाथ जोड़कर, गद्गद् कण्ठ से प्रार्थनाएँ अस्वीकृत कीं।

अंग्रेज़ इतिहासज्ञ कहते हैं—कि नाना साहब इस प्रकार सबकी आँखों में धूल झोंककर, और अपनी जान बचाकर कहीं चल दिये। कहाँ गये ?—इसका किसी इतिहास में उल्लेख नहीं है। अस्तु—

नाव चल दी, और गंगा के बीचों-बीच जाकर दीपक बुझ गया। लोगों ने परमात्मा से नाना साहब और उनके कुटुम्बियों की आत्मा को शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना की।

परिशिष्ट

घनघोर जंगल और भयंकर अँधेरी रात......

एक झोपड़ी है—सारे जँगल में अकेली। पाँच-सात दिन पहले ही बनी मालूम होती है।

झोपड़ी साधारण झोपड़ियों से बहुत अधिक बड़ी है; इतनी बड़ी है—कि फूस का एक मंज़िला घर कहें, तो भी अनुपयुक्त न होगा।

भीतर तीन भाग हैं। —एक स्त्रियों के सोने का, दूसरा पुरुषों का, तीसरा भण्डार-घर या रसोईघर।

मरदाने भाग में कई आदमी सोये हैं। अँधेरे में हम नाना साहब और अज़ीमुल्लाखाँ को पहिचान सकते हैं। बाकी कौन हैं ?—यह न हम जानते हैं, न जानने से प्रयोजन ! ज़नाने भाग में कई स्त्रियाँ हैं—पर मैना नहीं है, इसका हमें निश्चय है।

अज़ीमुल्लाखाँ का पागलपन दूर नहीं हुआ है—नाना साहब के पलायन के बाद वे संयोगवश इन्हें मिल गये, और कई दिन से यहीं रहते हैं।

आधी रात थी। सहसा अज़ीमुल्लीखाँ सोते-सोते ज़ोर से उछले, और उनकी नींद टूट गई। न मालूम नींद में क्या देखा !—या क्या हुआ—कि मिनट-भर बाद ही वे चुपके-चुपके शय्या से नीचे उतर गए। खूँटी पर उनकी वही फ़ौजी वर्दी टँगी थी, ज़िसे पहनकर उन्होंने कानपुर छोड़ा था। बहुत धीरे-धीरे हाथ बढ़ाकर उन्होंने वर्दी उतारकर पहनी, एक कोने में रखी हुई कटार कमर में खोंसी, और बिना आहट किये—चोरों की तरह—टट्टी हटाकर झोपड़े से बाहर हो गए !

पागल अज़ीमुल्लाखाँ क्या करेंगे ?

कानपुर इस जगह से आठ मील है और बिठूर बाईस मील।

बिठूर को रास्ता कानपुर में होकर जाता है। अज़ीमुल्लाखाँ साँस रोककर कानपुर की तरफ दौड़े।

अज़ीमुल्लाखाँ की दौड़ कोई देखता—तो अचरज करता। पैर मानो पृथ्वी पर पड़ते ही नहीं थे। चार पाँव का घोड़ा भी चौकड़ी भरकर उनसे आगे न निकल सकता ?—बस, एक बिठूर पहुँचने की लगन थी; —पैर लहू-लुहान हो गये—परवाह नहीं, नाक से खून बहने लगा—चिन्ता नहीं, वर्दी पसीने से भरकर बोझल हो गई—ख्याल भी नहीं !

भाग-भाग—भाग-भाग अज़ीमुल्लाखाँ एक घण्टे में कानपुर पहुँच गये। भीतर गये। देखा सब जगह गोरे सन्त्री हैं—परन्तु विजय के मद और गर्मी की रात की मीठी हवा ने सबको ग़ाफ़िल बना रखा है। आगे बढ़े। देखा—परेड का मैदान है। दर्जनों फाँसियाँ गड़ी हुई हैं, और उन पर काली डरावनी लाशें झूल रही हैं। आगे बढ़े। एक जगह बड़ी फिसलन हो रही है। ध्यान से देखा—खून है ! उससे आगे बढ़े। देखा—दो गोरे किसी स्त्री को जबर्दस्ती उठाए कहीं ले जा रहे हैं। स्त्री चिल्लाने की चेष्टा करती है, परन्तु मुँह बन्द होने के कारण विवश है !

अज़ीमुल्लाखाँ ठठाकर हँस पड़े। रात के सन्नाटे में उनकी वह अट्टहासपूर्ण ध्वनि दूर-दूर तक पहुँची। गोरे चौंककर खड़े हो गये। पर इस अट्टहास की ध्वनि की मीमांसा करने के पूर्व ही दोनों अज़ीमुल्लाखाँ की कटार के मूक शिकार बन गये ! स्त्री अचकचाकर अपने रक्षक को देखने लगी। अज़ीम ने उसे धक्का देकर तिरस्कार पूर्वक कहा—"मैंने तेरी रक्षा के लिए इन्हें नहीं मारा है—प्यारी···के आदेशानुसार ग़दर की आग में···प्यारी ···के नाम पर फिरंगियों की अंतिम रक्तान्जलि है—स्वतन्त्रता की देवी के चरणों में···फिरंगियों के खून की यह आखिरी बूंद चढ़ाई है।···खड़ी क्या देखती है ?—जा भाग !"

स्त्री भयभीत होकर भाग गई।

तब अज़ीमुल्लाखाँ बिठूर की तरफ दौड़े।

वही रास्ता, वही पेड़, वही घास, वही हवा, वही पत्थर,— सब—एक एक करके—दौड़ते-दौड़ते—अज़ीम की आँखों से आगे— नाचने लगे।—और वही मैना?

—मैना की सूरत साफ-साफ उन्हें दिखाई न देती थी। मानो— मैंना स्वर्ग की देवी है—और वे राक्षस,—उन्हें उसको देखने का अधिकार नहीं है। और अगर स्वप्न सच्चा हुआ-तो?

हाँ, स्वप्न सच्चा-ही हुआ। चहार-दीवारी से लगी हुई, वह है, दर्वाजे के पास—वह दहकती हुई चिता, हाँ, उसमें-ही जीती जला दी गई है वह!—यहीं उन राक्षसों ने अपनी पाशविकता का परिचय दिया है!!—यहीं उस प्यारी का फूल-सा कोमल गात.........!!! आह!

अज़ीमुल्लाखाँ एक छलाँग में चिता के समीप पहुँच गए। लपटें तो नहीं थीं—मगर लकड़ी के मोटे कुन्दे तब तक दहक रहे थे।

—पर मैना राख हो चुकी थी!—चाँदी की प्रतिमा मिट्टी में मिल चुकी थी!!—एक विशाल आत्मा मर्त्य-लोक का त्याग कर गई थी!!!

अज़ीमुल्लाखाँ कई मिनट निस्तब्ध खड़े चिता की दहकती आग में मानो कुछ पढ़ते रहे, या किसी आदेश की प्रतीक्षा करते रहे।

उन्होंने कुछ पढ़ा या नहीं—अथवा कोई आदेश आया या नहीं—लेखक इस विषय में कुछ नहीं जानता—पर तीन चार मिनट पत्थर की तरह खड़े रहकर उन्होंने जो किया उसे, उपस्थित रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति देख सकता था!

उन्होंने एक बार कातर होकर जोर-से कहा—"मैना!...... प्यारी! मैं आया...!" तब उन्होंने दाँये हाथ में कटार ली, बाँये से

सिर के बाल कसकर पकड़े—ग्रौर एक बार, फिरंगियों का नाश !" कहकर कटार ज़ोर-से गर्दन पर फेर ली !!

एक हाथ में ग्रपना कटा हुग्रा सिर था, दूसरे में कटार, ग्रौर रक्त की तीन लम्बी मोटी पिचकारियाँ छूट रही थीं !! इसी ग्रवस्था में वे दहकती चिता में जा पड़े !!!

पास के पेड़ पर बैठा हुग्रा उल्लू कलेजा फाड़कर रो उठा !!'

बस खतम हुग्रा !

हमारे-प्रकाशन

१. मंदिर-दीप	ऋषभचरण जैन	७.००
२. तपोभूमि	जैनेन्द्रकुमार	५.००
३. हिज़-हाइनेस	ऋषभचरण जैन	५.००
४. हर-हाइनेस	,,	३.००
५. चम्पाकली	,,	३.००
६. ग़दर	,,	२.५०
७. रहस्यमयी	,,	२.५०
८. सत्याग्रह	,,	१.५०
९. कहानियाँ १ से ४	,,	प्रत्येक ४.००
१०. राजकुमार-भोज	,,	१.००
११. षड़यन्त्रकारी	ड्यूमा	३.००
१२. कंठहार	,,	५.००
१३. देवदूत	टॉल्स्टॉय	२.२५
१४. टॉल्स्टॉय की डायरी	,,	७.५०
१५. तलाक़	प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त	४.००
१६. चारुलता	योगेश गुप्ता	२.५०
१७. वसन्त-मंजरी	तुर्गनेव	३.५०
१८. लेनिन और गांधी	यशपाल	७.५०
१९. उमङ्ग	गोपालसिंह नेपाली	४.००
२०. परीक्षा-गुरु	श्रीनिवास दास	६.२५

ज्ञान—प्रकाशन

चावड़ी बाज़ार

दिल्ली